॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

श्री श्री भागवत-पत्रिका

वर्ष—२१ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—५-९

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीरघुनाथदासको स्व-सेवित गोवर्धन-शिला तथा गुञ्जामाला प्रदान करना

• स्तवमाला • गुरुवर्गका वाणी-वैभव • श्रील गुरुदेवके वचनामृत

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा–स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी
श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक संघ—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त जनार्दन महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त भारती महाराज
श्रीयुक्ता सुचित्रा दासी, श्रीमती वृन्दा(वन्दना) दासी

सहकारी सम्पादक संघ—डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी–एच. डी.
डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी–एच. डी.
श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'

कार्याध्यक्ष—श्रीमद् प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल— श्रीगोकुलचन्द्र दास, श्रीप्रेमदास, श्रीसुबलसखा दास,

ले–आउट, फोटो एवं डिजाइन—श्रीभक्तबान्धव कृष्णकारुण्य महाराज

कार्यकारी सहायक—श्रीभक्तिवेदान्त निरग्नि महाराज, पूजा दासी,
केशव दास, सुशीलकृष्ण दास, गौरप्रिया दासी, शचीनन्दन दास

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा–२८१००१(उ. प्र.)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

www.purebhakti.com www.harikatha.com
bhagavata.patrika@gmail.com

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

वर्ष २१

श्रीगौराब्द – ५३९

वि. सं. – २०८२; श्रीधर-केशव मास ; सन् – २०२५ (११ जुलाई-४ दिसम्बर)

संख्या ५-९

विषय-सूची

'स्तव-वैभव'

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत २
—श्रील रूप गोस्वामी

गुरुवर्गका वाणी-वैभव

जीवके प्रति उपदेश ६
—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीश्रीसरस्वती-संलाप ९
—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

श्रील प्रभुपादके आचार-विचारसे च्युत व्यक्तिका सङ्ग परित्यज्य १४
—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

गौड़ीयका बत्तीसवाँ वर्ष १६
—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रील गुरुदेवके वचनामृत

अद्वयज्ञान परतत्त्व २१
—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

धारावाहिक

श्रीगौराङ्ग-सुधा २८

विरह-सम्वाद

स्वधाममें श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज ३४

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभुकी स्मृतिमें ३६

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट-संस्थापक श्रीश्रील रूप गोस्वामी प्रभुके द्वारा प्रणीत

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत

(वर्ष-२१, संख्या १-४ से आगे)

अथ रासक्रीड़ा

॥ नमः श्रीरासरसिकाय ॥

शारद शशधर वीक्षंणहृष्टः
परम विलासालिभिरभिमृष्टः।
बल्लव रमणीमण्डलभाव-
प्रोल्लासककल मुरलीरावः ॥ १ ॥

हे श्रीकृष्ण! एक बार शारदीय पूर्णचन्द्रके दर्शनसे आनन्दित और व्रजरमणियोंके भावोंसे आकृष्ट होकर आपने रासक्रीड़ाकी इच्छासे अपनी मुरलीपर मधुर नाद किया॥ १॥

अथ सकलाभिर्मदविकलाभि-
र्निशि परिभूय स्वजनान् भूयः।
अविरुवतीभिर्नवयुवतीभि-
र्विहितोद्देशः सुन्दरवेशः ॥ २ ॥

तत्पश्चात् यौवन-मदान्ध गोपयुवतियाँ उस मुरलीकी ध्वनिको सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। उस मध्यरात्रिमें वे पति, पुत्र और अन्य आत्मीयजनोंके निषेध वाक्योंका उल्लङ्घन करके बिना कोई शब्द किये सुशोभन वेशधारी आपको वन-वनमें खोजने लगीं॥ २॥

मिलितमृगाक्षी-वाञ्छितसाक्षी-
कृतपरिहासः स्फीतविलासः।
तदमलवाणी-निशितकृपाणी-
दलितनिकारः कलितविकारः ॥ ३ ॥

तदनन्तर, गोपियोंके आपके निकट आनेपर आपने अनेक परिहासमय वचनोंसे उनके वाञ्छित भावोंके प्रति उदासीनता प्रकाशित की। उस समय उन गोपाङ्गनाओंने विमल वाणीरूपी तीक्ष्ण कृपाणके द्वारा आपके शाठ्य भावको खण्डित करके आपके हृदयमें कन्दर्प-विकारको परिवर्धित किया॥ ३॥

प्रमदोत्तरलित-बल्लवनारी-
मुखचुम्बन-परिरम्भणकारी।
उन्नत-मनसां सुदृशां मान-
प्रेक्षणतः कलितान्तर्धानः ॥ ४ ॥

तदुपरान्त आपके द्वारा मुखचुम्बन और आलिङ्गन आदिसे गोपियोंके मानवती होनेपर उनके गर्वको दूर करनेके लिये, हे कृष्ण! आप वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ४॥

अनुकृत–चरितः पुलिने परित–
स्तरुषुच पृष्टः क्वापि न दृष्टः।
युवति चमूभि स्त्वरितममूभि–
र्मुहुरनुगीतः कुतुकपरीतः॥५॥

आपके अन्तर्धान होनेपर गोपियाँ आपके अदर्शनसे व्याकुल होकर वृन्दावनके वृक्ष–लताओंसे आपके विषयमें जिज्ञासा करने लगीं। कहींपर भी आपका अनुसन्धान न प्राप्तकर वे यमुनातटपर जाकर आपकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं और आपके गुणोंका मधुर गान करने लगीं॥५॥

काकुभिराभिः प्रार्थितसङ्गः
प्रकटित–मूर्त्तिर्धृत–रतिरङ्गः।
किमपि निगूढरुषा परिपृष्टः
कलितोत्तर–विधिरलमुपविष्टः॥६॥

गोपियोंके द्वारा इस प्रकार काकु (आर्त्तियुक्त) और करुण वाक्योंसे आपके सङ्गकी प्रार्थना करनेपर भुवन मनमोहन साक्षात् मन्मथके भी मन्मथ रूपमें आप उनके सन्निकट आविर्भूत हुए और उनके द्वारा प्रदत्त उत्तरीय वस्त्रोंपर विराजमान हुए। "एकमात्र आपके प्रति पूर्णतया समर्पित हम निरपराध गोपियोंको आपने रात्रिमें क्यों त्याग दिया था", प्रणय–कोपवश गोपियों द्वारा यह पूछने पर—"मैंने तो केवल तुम्हारे प्रेमका वर्धन करनेके लिये तुम्हारा त्याग किया था। मेरे प्रति तुम्हारे प्रगाढ़ प्रेमके कारण मैं तुम लोगोंका सदैव ऋणी हूँ", इस प्रकार आपने सम्यक् उत्तर प्रदान किया। तब अति प्रसन्न हुई गोपियोंके साथ आप रतिरङ्गमें प्रवृत्त हुए॥६॥

करुणाशीलः खण्डितपीलः
स्तवकितलीलः कुवलयनीलः।
धृतमृदुहासः प्रेमनिवास–
स्तततनुवासः कल्पितरासः॥७॥

तत्पश्चात् नीलकमलकी भाँति श्यामकान्तियुक्त, करुणासे द्रवितचित्त और प्रेममय आपने प्रणयपूर्ण वचनोंके द्वारा गोपाङ्गनाओंकी मनोवेदनाको दूर करते हुए प्रेमविलासोचित मोहनमूर्ति धारण करके उनके साथ रासक्रीड़ा आरम्भ की॥७॥

अथ परिकल्पितं–मण्डलबन्धः
कुसुमशरासन–विभ्रमकन्दः।
युवती–युगयुग–सुभगस्कन्ध–
न्यस्तलसद्भुज–दण्डद्वन्द्वः॥८॥

तदनन्तर कन्दर्पविलासके मूलकारणस्वरूप आपने व्रजगोपाङ्गनाओंको मण्डलाकार रूपमें व्यवस्थितकर दो–दो गोपियोंके स्कन्धोंपर अपने सुन्दर सुठाम भुजयुगलोंको अर्पित किया॥८॥

अलिपरिवीते मारुतशीते
वरसङ्गीते भुवनातीते।
भूषण–तारध्वनि–परिसार–
क्रान्त–वनान्ते शशिरुचिकान्ते॥९॥

भ्रमरोंके सुमधुर गुञ्जनके द्वारा, सुशीतल समीरके मृदुमन्द सञ्चालनके द्वारा, गोपाङ्गनाओंके त्रिभुनातीत मधुर सङ्गीत एवं उनके नूपुरादि अलङ्कारोंकी ध्वनिके द्वारा तथा शरदपूर्णिमाके चन्द्रकी कमनीय शीतल किरणोंसे समस्त वन प्रदेश अति रमणीय हो उठा॥९॥

मध्यग–मध्यग–मधुपरिराजि–
स्फुट–चम्पकतति–विभ्रमभाजि।
रासे–कृत–रुचिरन्तस्थायी
वेणुमुखाधर–पल्लवदायी॥१०॥

दो–दो चम्पक पुष्पोंके मध्यवर्ती भ्रमरकी भाँति आप गोपीमण्डलमें अपने कायव्यूहका विस्तारकर महारासकी इच्छासे श्रीमती राधिकाके साथ मिलित होकर गोपिकामण्डलके मध्यमें वेणुवादन करने लगे॥१०॥

स्तम्भित-राकापतिरविकारा-
नपि सुरदारान्मदयन्नारात्।
कुतुकाकृष्ट-श्चिरमभिवृष्टः
सपदि विलूनैः सुरतरुसूनैः ॥११॥

आपकी इस अलौकिक लीलाके दर्शनसे राका-पति चन्द्रमा (पूर्णिमाके चन्द्र) भी स्तम्भित हो गये। सर्वदा अविकारी होनेपर भी देवाङ्गनाएँ दूरसे ही इस लीलाके दर्शनकर कामविह्वला हो गयीं और कल्पवृक्षके पुष्पोंका चयनकर वे आपके ऊपर वर्षण करने लगीं॥ ११ ॥

अथ कल्पीकृत-रजनि-विहारी
खस्थसुरासुर-विस्मयकारी।
निज-निज-निकटस्थिति-विज्ञान-
प्रमुदित-रमणीकृत-सम्मानः ॥१२॥

अनन्तर उस रासरात्रिको ब्रह्माकी रात्रिके समान दीर्घकाल तक स्थायी करके आपने उसमें विहार करना आरम्भ किया। आपकी लीला दर्शनसे आकाश-स्थित सुर-असुरगण विस्मित हो उठे और प्रत्येक व्रजरमणी आपको अपने निकटमें देखकर आनन्दपूर्वक आपका सम्मान करने लगीं॥ १२॥

निजदृग्भङ्गी-क्षुभित-कुरङ्गी-
नयनामण्डल-गुरुकुचसङ्गी।
केलिविलोलः प्रचलनिचोलः
स्वेदजलाङ्कुर-चारुकपोलः॥१३॥

आप अपनी नयन-भङ्गीके द्वारा मृगनयनी गोपाङ्गनाओंको उन्मादितकर उनके उन्नत कुच-मण्डलोंका आलिङ्गन करने लगे। क्रीड़ासक्त होनेपर आपके वस्त्र स्खलित होने लगे और स्वेद जलकणोंके द्वारा आपके कपोलोंकी अपूर्व शोभा हो रही थी॥ १३॥

कुमुदयुतायां तरणिसुतायां
सलिलविनोदः प्रवलितमोदः।
युवतीनिकाय-प्रोक्षितकायः
शिथिलितमालः पुलककरालः॥१४॥

रासक्रीड़ाके अन्तमें आपके सर्वाङ्ग पुलकित कलेवरपर वनमाला शिथिल रूपसे विराज रही थी तथा आपके द्वारा कुमुद पुष्पोंसे शोभायमान कालिन्दीमें जलविहारके उद्देश्यसे प्रवेश करनेपर व्रजयुवतियोंके द्वारा आपके अङ्गोंके ऊपर प्रचुर जल सेचन करनेके फलस्वरूप आपके मनमें अत्यधिक आनन्दानुभव हुआ॥ १४॥

अथ वनमाली वरविपिनाली-
कुञ्जनिकेतन-वीक्षणशाली।
जयति विहारी निशि मणिहारी
व्रजतरुणीगण-मानसहारी॥ १५ ॥

तदनन्तर व्रजतरुणियोंके चित्तहारी, मणिमय हार एवं वनमालाके द्वारा विभूषित आपने रात्रिमें मनोहर वनमें विहारके उद्देश्यसे निभृत निकुञ्ज निकेतनका अन्वेषण किया। आप जययुक्त हों॥ १५॥

नतजनबन्धो! जय रससिन्धो!
वदनोल्लसित-श्रमजलबिन्दो!
त्वमखिल-देवावलिकृतसेवा-
सन्ततिरधमा वयमिह के वा?॥१६॥

हे प्रणतजनबन्धो! हे रससागर! आपकी जय हो, जय हो। रासक्रीड़ाके द्वारा अत्यधिक क्लान्त आपके मुखमण्डलपर स्वेद जलकी बूँदें अपूर्व रूपसे शोभित हो रहीं हैं। समस्त देवगण आपकी ही आराधनामें प्रवृत्त हैं, अतएव हम जैसे अधम आपकी सेवाके योग्य कैसे हो सकते हैं?॥ १६॥

जय जय कुण्डलयुगरुचिमण्डल-
वृत-गण्डस्थल दमिताखण्डल।
धृतगोवर्धन गोकुलवर्धन
देहि रतिं मे त्वयि मुरमर्दन॥१७॥

हे मुरमर्दन (मुर दैत्यका वध करनेवाले श्रीकृष्ण)! आपकी बारम्बार जय हो। दोनों कर्ण-कुण्डलोंकी प्रभासे आपके कपोल अद्भुत शोभा प्राप्त कर रहे हैं। आपने गोवर्धनको धारणकर इन्द्रके गर्वको चूर्ण किया और श्रीवृन्दावनकी शोभाको परिवर्धित किया। अतः यह अधम व्यक्ति इस समय आपसे आपके प्रति ऐकान्तिक भक्तिकी प्रार्थना कर रहा है (मेरे इस अभीष्टको पूर्ण करके अपने कृपामय नामको सार्थक कीजिए)॥ १७॥

॥ इति रासक्रीड़ा॥

क्रमशः

जीवके प्रति उपदेश

(वर्ष-२१, संख्या-१-४ से आगे)

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका वाणी-वैभव

प्रश्न २५—कलियुगसे आशङ्कित साधकोंके लिये कौन-सा निर्दिष्ट पथ है?

उत्तर—"सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि यह कलियुग है। जो व्यक्ति शुद्धभक्तिके अनुशीलनमें प्रवृत्त होते हैं, कलि उनके शुद्धभक्ति-मार्गमें बाधा पहुँचानेके लिये अनेक कुपथ अर्थात् भक्तिविरुद्ध मत सृष्टि करता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति महाप्रभुके निज आचरण एवं उनके उपदेशोंका अनुगमन करते हुए समस्त कार्य करेगा तब कलि उनपर अपना प्रभाव नहीं डाल पायेगा।"

(वैष्णवसेवा, सज्जन-तोषणी, ६/१)

प्रश्न २६—साधकोंको किस प्रकारसे दृढ़ तथा सहिष्णु बनना चाहिये?

उत्तर—"कोई तुम्हें धक्का देकर गिरा ही दे, तुम्हारा अपमान करे, कोई असत् व्यक्ति तुम्हें ठग ले, कोई तुम्हारे प्रति हिंसा करे, कोई तुम्हारी भर्त्सना करे, अथवा कोई तुम्हें बाँध दे, अथवा कोई तुम्हारी सम्पत्ति हरण कर ले, कोई तुमपर थूक दे, अथवा कोई तुम्हारे शरीरपर मूत्र त्याग कर दे अथवा कोई अज्ञव्यक्ति तुम्हें अनेक प्रकारसे कष्ट दे, तथापि तुम दृढ़रूपसे आत्मकल्याणकी कामना करनेवाले बनना तथा मनको भक्ति-आश्रिता बुद्धिके द्वारा कुविषयसे अवश्य ही मुक्त कराना।"

(साधनभक्तिः, श्रीभागवतार्क मरीचिमाला, १२/५)

प्रश्न २७—श्रीमन्महाप्रभुके अकपट सेवकोंके लिये क्या आश्वासन है?

उत्तर—"करुणामय महाप्रभुकी कृपासे अतिशीघ्र समस्त सामाजिक अमङ्गल दूर होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अकृत्रिम(अकपट)रूपसे श्रीमन्महाप्रभुका चरणाश्रय करनेसे किसी भी विषयमें चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।"

('मनुष्य सम्बन्ध और वैष्णवधर्म, प्रथम प्रबन्ध', सज्जन-तोषणी, २/७)

प्रश्न २८(क)—श्रीचैतन्यलीला-दर्शनकी लालसा रखनेवाले तथा कृष्णप्रेमकी प्राप्तिके लिए आतुर विश्ववासी भक्तोंकी कैसी अवस्था होती है?

उत्तर— जबे प्रभु गौरचन्द्र आनन्द-तरङ्गे
रसाइल भूमण्डल, समुद्र येमति
पुराकाले भासाइल पृथिवीर उच्च
गिरिचूड़ा जलवेगे, केन से समये
ना जन्मिनु भाग्यहीन नराधम आमि?
नारिलाम आस्वादिते से प्रेमलहरी!!
केन आमि ना रहिनु से अपूर्वकाले
सेविते चैतन्य-पद? केन ना हइनु
रूप-सनातन दास? केन ना वहिनु
रघुनाथेर करङ्ग? रामानन्द सने
केन ना फिरिनु आमि चक्रतीर्थ माझे?
केन ना देखिनु सार्वभौमेर उद्धार?
काशीवासी दण्डिपति प्रकाश आनन्द
सरस्वती सङ्गी सह कुतर्क छाड़िया
भक्तिरूपी परानन्द लभिल जे काले
प्रभुस्थाने, केने आमि ना चाहिनु हाय
से तर्क-तरङ्गसुधा हरिभक्तिपूर्ण?
एहेन वाञ्छित पद यदिओ दुर्लभ,
तबुओ ह'ताम धन्य यदि से समये
जन्मिताम विप्रकुले तर्ककाण्डी हये,
ता हले जीवेर बन्धु श्रीकृष्णचैतन्य
आमा लक्षि' छाड़ितेन तीक्ष्ण तर्कबाण,
लइतेन दण्ड दिया ऐहेन पाषण्डे
पदतले, सँपितेन हरिदासे मोरे,
हरिनामे शुधिवारे ए दुष्ट हृदय!!
आहा! चित्तक्षे तबु देखि निरन्तर,
प्रभु जबे, वैष्णव-वेष्टित, सिञ्चितेन प्राण
हरिनामामृत दाने एदग्ध संसारे,
कत जे बाड़ित प्रेम सङ्गीगण-मने
सुनिर्मल! दीर्घबाहु उत्तोलन करि,
जागाइया जीवगण मोहनिद्रा हते
बलितेन—लह सबे भवौषधि, प्रेम
पिया निरवधि हओ अमृत स्वरूप!!
यूथे यूथे श्रेणीबद्ध असंख्य मानुष
विषय-दनुज-भये मागित आश्रय
प्रभुपदे, प्रभु सबे प्रेम-आलिङ्गने
तुषिया श्रीकृष्णप्रेम करितेन दान!!
प्रेमानन्द विलम्पने हृदरोग घुचित!!

मतिहारी, फाल्गुन १२७६, २७ फरवरी १८७०

(वैष्णव निमन्त्रण, सज्जन-तोषणी, १९/२)

अर्थात् जिस प्रकार पूर्वकालमें समुद्रने पृथ्वीके ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंको भी जलके वेगमें निमग्न कर दिया था, उसी प्रकार जब श्रीगौरचन्द्र आनन्दकी तरङ्गोंमें सम्पूर्ण भूमण्डलको निमज्जित कर रहे थे, उस समय मुझ दुर्भागे नराधमका जन्म क्यों नहीं हुआ? मैं उन प्रेमकी लहरियोंका आस्वादन नहीं कर सका! उन श्रीचैतन्य महाप्रभुके श्रीचरणोंकी सेवा करनेके लिये मैं उस अपूर्वकालमें उपस्थित क्यों नहीं था? मैं श्रीरूप गोस्वामी तथा श्रीसनातन गोस्वामीका दास क्यों नहीं बन पाया? मैंने श्रीरघुनाथदास गोस्वामीका करङ्ग (जलपात्र) क्यों वहन नहीं किया? मैंने श्रीरायरामानन्द प्रभुके साथ चक्रतीर्थमें भ्रमण क्यों नहीं किया? मैंने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी उद्धार-लीलाका दर्शन क्यों नहीं किया? जब अपने शिष्यों सहित काशीवासी दण्डि-संन्यासी प्रकाशानन्द सरस्वतीने कुतर्क छोड़कर श्रीमन्महाप्रभुके भक्तिरूपी परमानन्दको प्राप्त किया, उस समय संन्यासियोंके सम्मुख महाप्रभुके श्रीमुखसे प्रकटित उस हरिभक्तिपूर्ण तर्कवाक्योंकी तरङ्ग-सुधाका हाय! मैं आस्वादन क्यों नहीं कर पाया?

यद्यपि ऐसा वाञ्छित पद प्राप्त करना बहुत दुर्लभ है, तथापि मैं धन्य होता यदि उस समय मेरा जन्म किसी विप्रकुलमें एक तार्किक पण्डितके रूपमें होता। तब जीवोंके बन्धु श्रीकृष्णचैतन्य अपने तीक्ष्ण तर्करूपी बाणोंसे मुझ पर प्रहार करते, वे मुझे दण्ड देकर मेरे जैसे पाषण्डीको अपने श्रीचरणोंमें स्वीकार करते तथा हरिनामके द्वारा मेरे इस दुष्ट हृदयको

शुद्ध करनेके लिये मुझे श्रीहरिदास ठाकुरके श्रीचरणोंमें समर्पित कर देते।

अहो! तब मैं अपने चिद्-चक्षुओंसे यह दर्शन कर पाता कि वैष्णवोंकी मण्डलीसे सुशोभित श्रीमन्महाप्रभु निरन्तर संसारके त्रितापोंमें दग्ध जगत्-वासियोंको हरिनामरूपी अमृतका दान देकर उनके प्राणोंका सिञ्चन कर रहे हैं। मैं यह भी दर्शन कर पाता कि जब महाप्रभु अपनी सुदीर्घ भुजाओंको उठाकर जीवोंको मोहनिद्रासे जगाकर कहते—"हे जीवगण! तुम सब भव-बन्धनरूपी रोगकी औषधि ग्रहण करो! निरन्तर इस प्रेमरूपी अमृतका पानकर तुम अमृतस्वरूप हो जाओ!" यह सुनकर असंख्य मनुष्य, जो विषयभोग रूपी दानवसे भयग्रस्त थे, महाप्रभुके श्रीचरणोंमें आश्रय माँगते। तब महाप्रभु सबको प्रेम आलिङ्गन प्रदानकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें कृष्णप्रेम प्रदान करते। कृष्णप्रेमके आनन्दमें विभोर होनेसे उनके हृदयका रोग दूर हो जाता तथा इस दृश्यको देखकर श्रीमन्महाप्रभुके परिकरोंके हृदयमें सुनिर्मल प्रेम कितना ही वर्धित होता!

प्रश्न २८(ख)—ऐसी (श्रीचैतन्यलीला-दर्शन तथा कृष्णप्रेम प्राप्त करनेकी) अभिलाषा रखनेवाले अन्य व्यक्तियोंका किस प्रकार आह्वान करना चाहिये?

उत्तर— "चैतन्यर दास आमि! जीव प्रभु मम
कर्णधार भवार्णवे। ताँहार विधाने
आह्वानि' तोमारे आमि हरिनाम लते।
कर्मकाण्ड, तर्ककाण्ड, ब्रह्मकाण्ड त्यजि'
एसो, जीव! प्रिय सखे! चैतन्येर प्रेम
अन्तर भरिया लह! घुचिबे हुताश!
कलिमल बद्धभाव! पाइबे स्वपद
शान्तिरस! आचरिबे जीवेर स्वभाव
कृष्णप्रेम! महाभाव अनन्त हइबे!
वैष्णवदास केदारनाथ सच्चिदानन्द प्रेमालङ्कार।"

मतिहारी, फाल्गुन १२७६, २७ फरवरी १८७०
(वैष्णव निमन्त्रण, सज्जन-तोषणी, १९/२)

अर्थात् मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुका दास एक तुच्छ जीव हूँ, और महाप्रभु ही मेरे एकमात्र पथप्रदर्शक और भवसागरसे मेरा उद्धार करनेवाले हैं। उनके निर्देशके अनुसार ही मैं हरिनाम ग्रहण करनेके लिये तुम सभीका आह्वान कर रहा हूँ—"हे जीवगण! हे प्रिय सखे! आओ, कर्मकाण्ड, तर्ककाण्ड, ब्रह्मकाण्डका परित्यागकर श्रीचैतन्य द्वारा प्रदत्त कृष्णप्रेम अपने हृदयमें भर लो! इससे तुम्हारी समस्त प्रकारकी निराशाएँ नष्ट हो जायेंगी, कलिमल बद्धभाव (असन्तोष, अशान्ति, कलह रूपी कलियुग जनित मल एवं माया-बद्धताका भाव) नष्ट हो जायेगा, तुम निज वास्तविक स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाओगे, तथा तुम परम शान्ति प्राप्त करोगे! तुम जीवके नित्य स्वभाव—कृष्णप्रेमका आचरण करोगे तथा अनन्त प्रकारके महान् भाव तुम्हारे हृदयमें प्रकटित होंगे। वैष्णवदास केदारनाथ (श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)का निवेदन है कि [कृष्ण]प्रेम ही सच्चिदानन्द वस्तु (जीव)का अलङ्कार है।

मतिहारी, फाल्गुन १२७६, २७ फरवरी १८७०)
('वैष्णव-निमन्त्रण', सज्जन-तोषणी, १९/२)
[श्रील भक्तिविनोद वाणी-वैभवसे अनुदित]

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' का वाणी-वैभव

श्रीश्रीसरस्वती-संलाप

प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष, अधोक्षज एवं अप्राकृत-तत्त्वके सम्बन्धमें विचार

(वर्ष २१, संख्या १-४ से आगे)

इस दोषयुक्त भौतिक जगत्‌में उस अधोक्षज वस्तुको ढूँढ़ पाना सम्भवपर नहीं है। इस भौतिक जगत् [की चिन्ताधारा] को पार करनेके पश्चात् सुनिर्मल अधोक्षज-सेवक सुनिर्मल अधोक्षजकी सेवा प्राप्त करते हैं। अपरोक्ष विचारमें ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता—त्रिपुटी अर्थात् इन तीन तत्त्वोंकी युगपत् सत्ता अस्वीकृत हुई है। अतः वहाँ 'सेवा' नामक कोई क्रिया नहीं रह जाती।

Fifth Stage—प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्षसे अतीत अधोक्षज विचारसे भी उन्नत स्तरका विचार है—अप्राकृत विचार। 'प्राकृत'—अर्थात् वह जो प्रकृतिसे उत्पन्न है। जो वस्तु प्राकृत नहीं है—अर्थात् जहाँ ब्रह्माण्डकी स्वामिनी बहिरङ्गा अपरा-प्रकृति—मायाशक्तिकी कोई क्रिया नहीं है, जहाँ भगवान् अपनी स्वरूपशक्ति ह्लादिनीके साथ परम चमत्कारितामय चिद्विलासपरायण हैं—वहीं 'अप्राकृत'-विचार परिस्फुट होता है। प्रत्यक्ष और परोक्ष विचारमें विष्णु-तत्त्वको अक्षज-दर्शन (इन्द्रियों द्वारा प्राप्त करने) के अन्तर्गत प्राकृत विचित्रतासे युक्त माना जाता है, और अपरोक्ष विचारमें विष्णु-तत्त्वकी प्राकृत-विचित्रतासे रहित निर्विशेष धारणा होती है। इन सबका अतिक्रमण करके अधोक्षज भगवान् हमारी सभी इन्द्रियोंके ऊपर अपने स्वतःकर्तृत्व-धर्मका विस्तार करके सेव्य-विचारमें प्रतिष्ठित हैं। जब अधोक्षज-भक्ति अत्यधिक चिद्विलासकी विचित्रतासे युक्त होकर परम चमत्कारितासे पूर्ण हो जाती है, तभी अप्राकृत-भक्तिका विचार उपस्थित होता है। "अधोक्षज अर्थात् विष्णु-तत्त्वकी तुलनामें अप्राकृत अर्थात् श्रीराधाकृष्ण-तत्त्वकी और अधिक चमत्कारिता केवल अनर्थ-शून्य हृदयमें उपलब्धिका विषय होती है।" ('गौड़ीय' वर्ष १३, अङ्क ४२ में 'अधोक्षज और अप्राकृत' लेख द्रष्टव्य है।)

स्थूल या सूक्ष्म तत्त्वका विचार लेकर उस अप्राकृत-राज्य तक पहुँचना सम्भव नहीं है। "*तदुपरि जाय लता गोलोक-वृन्दावन। कृष्णचरण-कल्पवृक्षे करे आरोहण॥* अर्थात् तब भक्तिलता परव्योमसे भी ऊपर गोलोक वृन्दावनमें पहुँच जाती है तथा वहाँपर श्रीकृष्णचरण रूपी कल्पवृक्षपर आरोहण करती है। (चै.च.मध्य. १९/१५४)"—यही अप्राकृत-विचारका लक्ष्य है।

व्यतीत्य भावनावर्त्म यश्चमत्कारभारभूः।
हृदि सत्त्वोज्ज्वले बाढ़ं स्वदते स रसो मतः॥

[जो विभाव, अनुभाव, व्यभिचारि आदि भाव-मार्गका अतिक्रमण करके, शुद्ध-सत्त्वके आविर्भाव होनेपर उज्ज्वल चित्तमें रतिकी अपेक्षा भी अत्यधिक चमत्कारिताको धारण किये हुए, आस्वादित होता है उसे 'रस' कहते हैं।]

भक्तिरसामृतसिन्धु (२/५/१३२)

उस अप्राकृत भूमिकामें ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता—अति सुनिर्मल भावसे विद्यमान रहते हैं। किसी प्रकार की deformity (विकृति) अथवा inadequacy (अपर्याप्तता) वहाँपर नहीं है। भोग्य एवं भोक्ताका अभिमान लेकर वहाँ पहुँचना सम्भव नहीं। मैं द्रष्टा बनकर उनका 'दर्शन' करूँगा, वे इस प्रकारके विचारके विषयीभूत नहीं हैं, मैं उनके 'दर्शन योग्य' किस प्रकार हो सकता हूँ, यही उनके दर्शन प्राप्त करनेका एकमात्र विचार है। श्रीविष्णुस्वामी—शुद्धाद्वैतवादी हैं, वर्तमान वल्लभ-सम्प्रदायके अनुयायी स्वयंको उनके अनुगत कहते हैं। उनका मत है कि वे Manifestive Transcendental aspect for the time being (कुछ समयके लिये प्रकाशित अप्राकृत सत्ता) हैं, परन्तु अन्ततः केवल अद्वैतके विचारमें प्रतिष्ठित होना होगा—परन्तु यह श्रीचैतन्य महाप्रभुका विचार नहीं है। श्रीचैतन्यदेवकी कथा—केवल अप्राकृत राज्यकी कथा है, जहाँ पर highest acme (सर्वोच्च शिखरपर)—सर्वोत्कृष्ट चिद्-विलासकी विचित्रता विद्यमान है। श्रीवल्लभके विचारके साथ श्रीमन्महाप्रभुके विचारमें इस विषयमें ही पार्थक्य है। अप्राकृत राज्यमें सत्त्व उज्ज्वल है, अनुज्ज्वल नहीं। Sir N.N. Sarkar (श्रीमान् एन. एन. सरकार)[१] जिस प्रकारकी भ्रान्तिमें पड़े हैं, उस प्रकारकी कोई भ्रान्ति उस स्थानमें नहीं है। चमत्कारितासे परिपूर्ण भूमिकामें रसका आस्वादन हो रहा है। किसके द्वारा? कौन उस रसका आस्वादन कर रहा है? इसके उत्तरमें कहते हैं—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि
विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु
तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

श्रीगीतगोविन्दम् (१/३)

[हे श्रोतागण! यदि श्रीहरिके चरित्रका चिन्तन करते हुए आपका मन सरस अनुरागमय होता है तथा उनकी रास-विहारादि विलास-कलाओंकी सुचारु चातुर्यमयी चेष्टाओंके विषयमें आपके हृदयमें कुतूहल होता है, तो मनोहर, सुमधुर, मृदुल तथा कमनीय कान्तिगुणवाले पदसमूह-युक्त कवि जयदेवकी गीतावलीको भक्ति-भावसे श्रवणकर आनन्दमें निमग्न हो जाएँ।]

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो
रसिका भुवि भावुकाः॥

श्रीमद्भागवतम् (१/१/३)

[हे भगवत्-प्रीतिरस-रसिकजन! हे अप्राकृत रसविशेषकी भावनामें चतुर भक्तगण! श्रीमद्भागवत वेदरूपी कल्पतरुका परमानन्द-रसमय परिपक्व फल है। यह छिलका, गुठली आदि कठिन हेय-अंशसे रहित तरल होनेके कारण पान करने योग्य है। श्रीशुकदेव गोस्वामीके मुखसे निकलकर शिष्य-प्रशिष्यादिकी परम्पराक्रमसे स्वेच्छासे पृथ्वीपर अखण्ड रूपमें अवतीर्ण इस फलको आपलोग मुक्त अवस्थामें भी पुनः पुनः पान करते रहें। स्वर्गके सुखोंकी उपेक्षा करनेवाले परम मुक्तपुरुष भी इस रसमय फल श्रीमद्भागवतकी उपेक्षा न करके नित्यकाल ही इसका सेवन किया करते हैं।]

१ सर नृपेन्द्र नाथ सरकार (१८७६-१९४५ई.) एक प्रसिद्ध वकील और राजनीतिज्ञ थे। वे १९२८ई. से १९३४ई. तक बंगालके एड्वोकेट जनरलके पद पर नियुक्त थे और १९३४ई. से १९३९ई. तक भारतके गवर्नर-जनरलकी परिषदके कानून-सदस्य (Law member) रहे।

डॉ. महेन्द्रनाथ सरकार[२] महोदयने हाल ही में इंग्लैंडमें जो भाषण दिया, उसमें उन्होंने निर्विशेषवादको ही सर्वोत्कृष्ट सत्य कहकर निर्धारित किया। यह हमारे मतके अनुरूप नहीं है। इससे श्रीमद्भागवतके प्रति विद्वेष ही सिद्ध होता है। यदि कोई व्यक्ति केवलाद्वैतवादके मतका समर्थन करता है तो यही निष्कर्ष निकलता है कि वह व्यक्ति अभक्त और भक्ति-विरोधी है। श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचैतन्यभागवतमें केवलाद्वैतवादको पूर्णरूपसे अस्वीकार किया गया है। इन ग्रन्थोंके विचारोंको प्रकट करनेके लिये ही श्रीधाम मायापुरमें 'ठाकुर भक्तिविनोद रिसर्च इंस्टिट्यूट' की—अनुकूल कृष्णानुशीलनके स्थानके रूपमें स्थापना की गई है। कृष्णका प्रतिकूल अनुशीलन, विशेषता रहित अनुशीलन, सीमायुक्त अनुशीलन करना प्रयोजनीय नहीं है। कृष्ण नित्य हैं, कृष्णभक्ति नित्य है, कृष्णभक्त नित्य हैं—इस तथ्यका ही अनुसन्धान हो। भगवान्, भक्ति और भक्तके नित्यतारूपी त्रिविध विवेचनमें कहाँ, किस प्रकार, किसके द्वारा कितनी मात्रामें त्रुटि हो रही है—इसका सूक्ष्म विश्लेषण करना ही इस रिसर्च इंस्टिट्यूटका कार्य है।

आपने हमारे इन विचारोंको श्रवण करनेके लिये इतना समय दिया—यह हमारे लिये विशेष आनन्दका विषय है। अधिकांश लोग इन बातोंको समझनेमें अत्यधिक विलम्ब करते हैं। अद्वैत-मतकी चिन्तन-धारा भिन्न प्रकारकी है; उनकी अवधारणाओंके आधारपर इन विषयोंका विवेचन करनेसे परिणाम विपरीत ही होगा।

२ डॉ. महेंद्रनाथ सरकार (१८८२-१९५४ई.) पहले कलकत्ताके संस्कृत महाविद्यालयमें अध्यापक थे और तत्पश्चात् क्रमशः प्रेसीडेंसी कॉलेज और कलकत्ता विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्रके प्राध्यापक रहे। उन्होंने काशी विश्वविद्यालय (१९४७) में आयोजित भारतीय दर्शन सम्मेलनकी अध्यक्षता की थी। वे रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्दके मतके समर्थक थे।

श्रील प्रभुपाद और अध्यापक श्रीयुक्त फणीभूषण अधिकारी

[१ जून १९२९, उस समय पुरीमें समुद्र-तटके निकट "पोड़ाकुठी" नामक एक बहुत विशाल भवनमें श्रीपुरुषोत्तम मठकी स्थापना हुई। श्रील प्रभुपाद उस समय वहीं निवास कर रहे थे। अपराह्न साढ़े पाँच बजे काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके दर्शनशास्त्र विभागके प्रोफेसर श्रीमान् फणीभूषण अधिकारी एम. ए. महाशय श्रील प्रभुपादसे भेंट करने हेतु वहाँ आये। उन्होंने प्रभुपादको प्रणामकर अपना परिचय दिया। श्रील प्रभुपादने उनका सम्मानपूर्वक स्वागत किया। अध्यापक अधिकारी महाशय और श्रील प्रभुपादके बीच जो संवाद हुआ, वह नीचे यथायथ प्रस्तुत किया गया है।]

अध्यापक—काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें जब आप महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषण महाशयके समक्ष वक्तृता प्रदान कर रहे थे, उस समय मैंने आपको पहली बार देखा था। दूसरी बार आपको ट्रेन स्टेशनपर देखा था, उस समय अमूल्य बाबू आपके साथमें थे। मुझे ज्ञात है कि आपने काशीमें भी एक शाखा-मठकी स्थापना की है।

श्रील प्रभुपाद—परन्तु काशीमें हमने अभी विशेषरूपसे प्रचार आरम्भ नहीं किया है।

अध्यापक—यदि हम सत्य कथाको वर्तमान शिक्षित समाजके उपयोगी रूपमें प्रस्तुत नहीं करें, तो इस संशयग्रस्त और तर्कप्रिय युगमें कोई भी सत्यको सुनना नहीं चाहता। यद्यपि शास्त्र कहता है—"*नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः*", तथापि आधुनिक शिक्षित, तार्किक समाजको यह शास्त्रीय विचार समझानेके लिये उपयुक्त शिक्षा आवश्यक है। महाप्रभुने व्याकरण, न्याय, दर्शन—सभी शास्त्रोंमें पारङ्गत होकर अन्ततः उन सबको त्यागकर हरिनामका ही माहात्म्य प्रचार किया। परन्तु

यदि वे नैयायिक और दार्शनिक विद्वान नहीं होते, तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जैसे तार्किक अथवा नवद्वीपके अन्य तर्कप्रिय नैयायिक व्यक्ति उनके विचारोंको सुनते, इसमें सन्देह है। जब मैं दिल्ली कॉलेजका प्रिंसिपल था, तब वहाँके संस्कृत भाषाके शिक्षक पण्डित महोदय विद्यार्थियोंको प्राचीन शिक्षा-पद्धतिके अनुरूप ही शिक्षा देते थे और विद्यार्थियोंको तर्क-युक्तिकी अपेक्षा विश्वासके ऊपर अधिक निर्भर रहनेको कहते थे। मैं उन पण्डित महोदयसे कहता था—आप एक सत्र (period) में 'विश्वास' पर आधारित भक्तिकी जिन बातोंको करते हैं, हम छः अन्य सत्रों (periods) में उसी विचारको ध्वंस करते हैं और विद्यार्थियोंको युक्ति तथा तर्कवादी बननेको कहते हैं। आप जो बातें कहते हैं, उनमें स्वयं आपका ही विश्वास नहीं दिखता—तो आप अन्योंको विश्वास कैसे दिला पायेंगे? (श्रील प्रभुपादको सम्बोधित करते हुए—) कृपया आप काशी चलें और वहाँ श्रीचैतन्यदेवके सन्देशका प्रचार करें—सम्भवतः तब शिक्षित जनोंकी आँखें खुलें।

श्रील प्रभुपाद—मैं निष्क्रिय हूँ; अब आयु भी अधिक हो गई है, मुझमें अन्य कोई कार्य करनेकी शक्ति नहीं है।

अध्यापक—आप तो सांख्यके पुरुष हैं न? आपका सान्निध्य ही पर्याप्त है। केवल आपके वहाँ उपस्थित रहने मात्रसे सब कुछ हो जायेगा। आप वहाँ पर यदि केवल बैठे रहेंगे, तब आपके शिक्षित शिष्यगण ही सब कार्य कर लेंगे। हम भी वैष्णव गुरु-परम्परासे हैं। कई लोग मेरे पास शिष्य बनने आते हैं। मैं कहता हूँ—"लोग शिष्य दो कारणोंसे बनाते हैं—एक व्यापार या धन अर्जित करनेके लिये और दूसरा परमार्थ दानके लिये। मैं तो धन अन्य उपायोंसे अर्जित करता हूँ, इसलिये धनके लिये गुरु बननेकी कोई प्रयोजनीयता मुझे प्रतीत नहीं होती, और परमार्थकी भी कोई ऐसी पूँजी मैंने अर्जित नहीं की कि तुम्हें कुछ दान कर सकूँ; मैं स्वयं ही इस विषयमें अन्धा हूँ।" बहुत लोग निजी सांसारिक स्वार्थसे मेरे पास शिष्य बननेके लिये आते हैं। गुरुका कार्य अत्यन्त कठिन कार्य है। जब मेरे पिता संन्यासी होकर काशी गये थे, तब उनके पास अनेक लोग सांसारिक इच्छाओंकी पूर्तिके लिये शिष्य बनने आते थे।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, विद्यासागर महाशय भी कुछ इसी प्रकारकी बातें कहते थे। परन्तु परमार्थ तो अर्जित करना ही होगा। वास्तविक गुरुके चरणोंका आश्रय ग्रहण करना होगा, और उनसे श्रवण की गयी कथाका ही कीर्तन करते-करते स्वयं भी गुरु बनना होगा। स्वार्थी होकर सर्वदा लघु ही बना रहूँगा—यह एक प्रकारकी आत्म-वञ्चना है। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभुने श्रीचैतन्यचरितामृतमें इन सब बातोंकी सुन्दर रूपसे विवेचना की है।

अध्यापक—श्रीचैतन्यचरितामृत तो श्रीचैतन्यदेवका लीला-ग्रन्थ है।

श्रील प्रभुपाद—यह लीला-ग्रन्थ मात्र नहीं है, अपितु एक अति-अद्भुत महा-दार्शनिक विचार-ग्रन्थ है। महाप्रभुकी लीलाओंके साथ-साथ इसमें दर्शनकी व्याख्या भी है। वास्तवमें श्रीकृष्णकी द्वितीय-लीला ही श्रीचैतन्यलीला है अथवा श्रीचैतन्यकी द्वितीय-लीला ही श्रीकृष्णलीला है। कविराज गोस्वामीने श्रीमद्भागवतके मार्गका अनुसरण करते हुए इस ग्रन्थकी रचना की है। Deccan College के प्रोफेसर महामहोपाध्याय अभ्यङ्करने सर्वदर्शनकी भूमिकामें कहा है कि श्रीरामानुज और श्रीमध्व—ये दोनों प्रच्छन्न तार्किक हैं, अर्थात् वे श्रौत-पन्थी नहीं, (प्रच्छन्न) तर्क-पन्थी[३] हैं।

अध्यापक—तर्क-पन्थी कौन होते हैं?

---

३ सम्पादकीय—वास्तवमें श्रीरामानुजाचार्य एवं श्रीमध्वाचार्य श्रौत-पन्थी हैं, किन्तु कोई-कोई जागतिक विद्याविद् उन्हें प्रच्छन्न तार्किक भी कहते हैं, कारण—प्राचीन कालमें भी वैष्णव-आचार्य तर्कक माध्यमसे भी वैष्णव-विचारधारा समझाते थे।

श्रील प्रभुपाद—तर्क-पन्थी अर्थात् वे जो परम सत्यको चुनौतीपूर्ण मनोवृत्ति (challenging attitude) के साथ आक्रमण करनेका प्रयास करते हैं। तर्क-पथ भगवद्गीताके विचार—"*तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया*" के विरुद्ध पन्था है। एक विचार है—वास्तव-सत्य-कीर्तनकारी श्रीगुरुदेवके निकट जाकर श्रवण करना और उनके सान्निध्यकी प्राप्तिका प्रयास करना। दूसरा विचार है—मैं अपने इन्द्रियोंसे प्राप्त ज्ञानके बलपर उस अतीन्द्रिय वास्तव-सत्यको "जाँच लूँगा, माप लूँगा"। श्रीमन्मध्वाचार्यने श्रीमद्भागवतकी टीकाके प्रारम्भमें ही श्रौत-पथ और तर्क-पथपर अपना विचार प्रस्तुत किया है। जो सिद्धान्त अन्वय (प्रत्यक्ष) रूपसे ग्रहण किया जाता है, वह श्रौत-पथ कहलाता है; और जो सिद्धान्त व्यतिरेक (अप्रत्यक्ष) रूपसे ग्रहण किया जाता है, वह तर्क-पथ है। दर्शनके पाँचों प्रमुख मत[४] तर्क-पथपर आधारित हैं, केवलमात्र वेदान्त-दर्शन ही श्रौत-पथको स्वीकार करता है। आचार्य शङ्करने लोक-मोहनके (जनसामान्यको मोहित करनेके) उद्देश्यसे वेदान्त-दर्शनमें श्रौत-पथका नाम लेकर तर्क-पथकी परिचालना [introduce] की है। आजकल तथाकथित शिक्षित लोग भी 'वेदान्त' शब्द सुनते ही श्रीशङ्कराचार्यके तर्क-पथ पर आधारित मतको ही समझते हैं।

इन्द्रियज ज्ञान वर्धन करनेपर तर्क-पथ लाभ होता है। जहाँपर प्रत्यक्ष और अनुमान श्रुतिके वाहन हैं, अर्थात् श्रुति तक पहुँचनेके लिये जो प्रत्यक्ष और अनुमानका अनुसरण किया जाता है, वह एक बात है; परन्तु यदि उसी प्रत्यक्ष और अनुमानका दुरुपयोग श्रुतिको विकृत करनेके लिये किया जाये, तो वह दूसरी बात है—वही तर्क-पन्थका सैन्यदल है। श्रीमन्मध्वाचार्यने श्रीशङ्कराचार्यको तर्क-पन्थी कहा है। श्रीमन्महाप्रभुने भी स्पष्ट किया है—यदि मैं अपने मतको स्थापित करनेके लिये श्रुति-मन्त्रोंमें से कुछको तो 'महावाक्य' कहूँगा और अन्य समस्त वचनोंको सामान्य वचन कहूँगा, ऐसा कहनेका मेरा क्या अधिकार है? मैं श्रुतिके अद्वैतपरक प्रतीत होनेवाले मन्त्रोंको ग्रहण करूँगा और द्वैतपरक मन्त्रोंका परित्याग करूँगा या अपने कपोल-कल्पित मतसे उनकी व्याख्या करूँगा—इस प्रकारकी सङ्कीर्णताको श्रुति-विरोधी कहा जाता है। जैसे गायके एक अङ्गकी रक्षा करने और अन्य किसी अङ्गको हानि पहुँचानेसे तो गोमाताके प्रति असम्मान ही प्रदर्शित होता है। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति गाय अथवा श्रुतिका वह अंश जिसके मन्त्र बाहरी रूपसे उसके व्यक्तिगत उद्देश्योंका पोषण करते हैं, उस अंशकी तो रक्षा करे तथा अन्य अंशोंको काट डाले, तो यह श्रुतिको नष्ट करनेका प्रयास नहीं है, तो क्या है? इसलिये श्रीमन्महाप्रभुने प्रणव (ॐ) को महावाक्य कहा है; प्रणवसे गायत्री, और गायत्रीसे वेदोंका विस्तार होता है। प्रणव समस्त वेदोंके आदि, मध्य और अन्तमें व्याप्त है। वेद भगवत्-तनु हैं—उनका प्रत्येक अङ्ग ही सुन्दर है; उनका कोई भाग तुच्छ या हीन नहीं है। 'जगत्के श्रुत शब्दोंकी कानके अतिरिक्त अन्य चार इन्द्रियों द्वारा परीक्षा कर लूँगा'—यह बात जड़-जगत्के लिये तो लागू होती है, परन्तु चिन्मय जगत्के लिये यह लागू नहीं होती।

अध्यापक—लेकिन श्रुतिको भी तो तर्कके द्वारा सत्यापित करना होगा।

श्रील प्रभुपाद—यह विचार उन्हीं लोगोंका है जो मानते हैं कि कर्म और ज्ञानके द्वारा भक्ति प्राप्त होती है।

अध्यापक—शङ्कराचार्यने कहा है कि श्रुतिके अनुकूल स्मृति और पुराण ही ग्राह्य हैं।

श्रील प्रभुपाद—आचार्य शङ्करने यह बात मुखसे ही कही है, परन्तु कार्य रूपमें ऐसा किया नहीं। कारण—निज क्रियाओं द्वारा इसे प्रमाणित करनेके लिये उन्हें इस जगत्में नहीं भेजा गया था।

क्रमशः

[श्रीसरस्वती-संलापसे अनुदित]

४ दर्शनक छः में से पाँच मत अर्थात् न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और पूर्व मीमांसा।

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

(पत्र-२२)

श्रील प्रभुपादके आचार-विचारसे च्युत व्यक्तिका सङ्ग परित्यज्य

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ,
चौमाथा, पोः-चुँचुड़ा (हुगली)
३१/३/१९६३

मेरे स्नेहके पात्र,

-----! प्रभो! आपका २२/३/६३ को भेजा पत्र २५/३/६३ को नवद्वीपमें प्राप्त हुआ था। मैं उससे पहले ही चुँचुड़ा आ गया था। वामन महाराजने आपका पत्र मुझे २७/३/६३ को लाकर दिया। उस दिन १३ चैत्र बुधवार था। अतः तब पत्र लिखनेपर १४ चैत्र (बृहस्पतिवार, २८/३/६३) तक आपको पत्र मिलने की सम्भावना नहीं थी।

अतः आपके----घरमें ताम्रलिप्त समितिके अधिवेशनमें भाग लेनेके सम्बन्धमें मेरा किसी प्रकारका विचार देनेका सुयोग नहीं हुआ। तथापि इसके सम्बन्धमें पहले ही मैंने आपको बताया था कि आप लोग अधिवेशनमें योगदान करना तथा----महाराजसे उनके द्वारा दीक्षित व्यक्तिको [उपवीत] संस्कार क्यों नहीं दिया गया, इस विषयमें विवेचना करना। आप संस्कारविहीन अदीक्षित व्यक्तिके द्वारा पकाये गये अन्नको ग्रहण मत करना।

[श्रील प्रभुपादकी विचारधाराके अनुगत किसीको] बर्तन-पात्र आदि देकर सहानुभूति करनेमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि हमारे सम्प्रदायके किसी व्यक्तिके द्वारा ही रसोई होनेपर किसी प्रकारका दोष नहीं होगा। तथापि आपने मेरा पत्र नहीं पहुँचने पर भी मेरे पूर्व कथनानुसार उपरोक्त नियमका पालन किया अथवा नहीं—मुझे लिखकर भेजना। मैंने गजेन्द्रमोक्षण प्रभुको भी इस सम्बन्धमें बताया था। आप लोगोंने इस विषयमें क्या किया, मुझे बताना।

दूसरी बात यह है कि----महाराजने हमारे नवद्वीप मठमें होम (यज्ञ) क्यों किया, उस विषयमें मैं वास्तविक तथ्य बताता हूँ—

(श्रीपाद) श्रौती महाराजने----महाराजको मुझसे पूछे बिना ही होम (यज्ञ करने) में नियुक्त किया था, मैंने उन्हें नियुक्त नहीं किया था। मैं अन्य विभिन्न कार्योंमें व्यस्त था और जब मैं विग्रह-प्रतिष्ठाके लिए मन्दिरके भीतर प्रविष्ट हुआ, तब मैंने----महाराजको होमके स्थानपर स्वस्तिवाचन पाठ करते हुए सुना।

मन्दिरमें श्रौती महाराज थे। मैंने उसी समय श्रौती महाराजसे कहा कि आपने----महाराजको होम करनेके लिए क्यों बैठाया? वे तो प्रभुपादके आचार-विचारको मानते ही नहीं हैं। मैं ऐसे व्यक्तिसे होम करवानेका इच्छुक नहीं हूँ। आप जानते हैं कि इस विषयमें मैं अत्यन्त कठोर हूँ।

तब श्रौती महाराजने मुझसे कहा—"आपने उन्हें निमन्त्रण देकर क्यों बुलवाया?" मैंने उत्तर दिया—"मैंने उक्त महाराजको निमन्त्रण नहीं दिया। आप उनसे पूछकर देख सकते हैं। मैंने जिस प्रकारसे आपको पृथक् रूपसे आमन्त्रण-पत्र दिया था, वैसे----महाराजको नहीं दिया। जिस प्रकारसे साधारण रूपसे छपे हुए पत्रके द्वारा सबको सूचित किया गया, सम्भव है कि वैसे ही उनको भी सूचित किया गया हो। किन्तु इस विषयसे मैं अवगत नहीं हूँ।

बादमें मैंने सुना कि----महाराज ----में उनके वार्षिक उत्सवके समय मेरी अनुपस्थितिमें नवद्वीपसे एक तम्बू तथा शामियाना ले गये थे। जब वे उन वस्तुओंको वापस देनेके लिए आये थे, उस समय वामन महाराजने शिष्टतापूर्वक----महाराजको परिक्रमा तथा विग्रह-प्रतिष्ठाके उत्सवमें योगदानके लिए आमन्त्रित किया था। उसके अनुसार ही वे उत्सवमें उपस्थित हुए थे। मैंने उन्हें विशेषरूपसे आमन्त्रण-पत्र नहीं दिया था।

यह सुनकर श्रौती महाराज बोले—"मैं तो यह जानता नहीं था।" जब उन्होंने मुझसे पूछा कि "होम फिर कौन करेगा?" तब मैंने कहा—"पण्डित राघवचैतन्य होम करेंगे।" तब गर्भमन्दिरसे बाहर आकर श्रौती महाराजने राघवचैतन्यको स्वस्तिवाचन तथा होम आदि करनेके लिए बैठा दिया। आप सभीने यह देखा था कि होमके निकट----महाराजकी बायीं ओर राघवचैतन्यने बैठकर होम किया। सत्क्रियासार-दीपिका ग्रन्थ दोनोंके ही हाथोंमें था।

तत्पश्चात्----महाराजके द्वारा कोई भी कार्य नहीं कराया गया। गङ्गाजल तथा पञ्चामृतसे विग्रहोंका अभिषेक एवं स्नान मैंने स्वयं किया था। मन्दिरके अन्दर विग्रहोंकी प्रतिष्ठा भी मैंने ही की। श्रौती महाराजने पौरोहित्य किया था। पूज्यपाद श्रीधर महाराजने मन्दिरका द्वार-उद्घाटन किया था।

----महाराज प्रसाद पाकर चले गये थे। जाते समय वे मुझसे मिलकर नहीं गये। तथापि हम उनके कल्याणकी कामना करते हैं कि वे श्रील प्रभुपादकी विचारधारामें प्रतिष्ठित हो सकें तथा उसके अनुकूल आचरण कर सकें, इसके लिए हम चेष्टाशील हैं। यहाँ तक कि वामन महाराज उनके साथ हमारे मठकी बातोंकी चर्चा भी करते हैं, इसलिए वे हमारे मठके आचार-विचारकी प्रशंसा करते हैं तथा हमारी 'गौड़ीय-पत्रिका' की निरपेक्षताकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने गौड़ीय-पत्रिकाके लिए एक प्रबन्ध भी दिया है। हमने गौड़ीय-पत्रिकामें उसे प्रकाशित किया है और आगामी अङ्कोमें भी कर रहे हैं। उनका प्रबन्ध पढ़कर देखना। वे एक पण्डित व्यक्ति हैं, लेखनके विषयमें विशेष सुपटु हैं। उनका प्रबन्ध पढ़नेसे ही यह समझ पाओगे।

xxxx मैं सुन्दरवन प्रचारमें जाऊँगा। वहाँसे वापस आकर आसाम जाऊँगा। इति—

आशीर्वादक

B. P. Keshava

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

(श्रीगौड़ीय पत्रिका, वर्ष-४२, संख्या-८ से अनुदित)

गौड़ीयका बत्तीसवाँ वर्ष

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीपत्रिकाका अप्राकृतत्व और वैशिष्ट्य

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाने बत्तीसवें वर्षमें शुभ प्रवेश किया है। इस नववर्ष-प्रवेशको वर्षारम्भ कह सकते हैं। अप्राकृत-वस्तु प्राकृत काल-गणना या समय-सीमासे परे अथवा उससे उन्नत सोपानपर अवस्थित है। मायाबद्ध जीव इस अनित्य, नश्वर, ध्वंसशील जगत्‌के समान अधोक्षज-तत्त्वको भी नाप लेना चाहते हैं। वे '*अनयाराधितः*' (आराधनाके योग्य) विचारको ग्रहण न कर '*अनया मीयते*' (माप लेने योग्य)—सुविधावादका आश्रय लेकर सम्पूर्ण विश्वके ऊपर अपना प्रभुत्व विस्तार करनेके लिए प्रतिबद्ध हैं। 'यह जगत् मेरी इन्द्रियतृप्तिकी पूर्ति करनेवाला है'—ऐसी वृत्तिसे ही संसार-बन्धन अथवा प्राकृत विषय-बन्धनकी दशा उत्पन्न होती है। कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड आदिमें स्थूल-सूक्ष्म भोगवाद अवस्थित है एवं वह भोगवाद ही मानवमें अन्याभिलाष रूप विपरीत ज्ञान अर्थात् 'मैं शरीर हूँ' इस भ्रमका प्रवेश कराता है। यह नश्वर संसार ईर्ष्या, हिंसा, मात्सर्य, प्रादेशिकता, साम्प्रदायिकता, भोगवाद आदि रोगोंसे आक्रान्त होकर कष्टपूर्ण और जर्जरित है। जगत्‌के तथाकथित नेतालोग तथा कर्म-ज्ञान-योगवीरगण इन अचिद्-वृत्तियोंको नष्ट करने या उनसे पार पानेमें असमर्थ हैं। मनोधर्मीगण जब तक जगत्-भोगके विचारको छोड़कर श्रीजगन्नाथकी सेवामें आत्मनियोग नहीं करेंगे, अमन्दोदय-दया [जिस दयाका प्रभाव कभी मन्द नहीं पड़ता]-वितरणकारी श्रीचैतन्यदेव और उनके निजजनोंका निष्कपट आश्रय नहीं लेंगे, तब तक विश्वका पूर्ण कल्याण और विश्वशान्ति सम्भव नहीं है।

श्रीमठ और मन्दिरोंकी स्थापनाकी आवश्यकता

इस वर्ष श्रीपत्रिकाने श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा परिचालित शुद्धभक्ति प्रचार-केन्द्रोंमें अन्यतम, सिलिगुड़ि स्थित श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठके नवनिर्मित श्रीमन्दिरको अपने वक्ष अर्थात् आवरण पृष्ठपर धारणकर आत्मप्रकाश किया है। इस मन्दिरमें गत वर्ष अक्षय-तृतीयाके दिनसे ही गुरुदेव श्रील केशव गोस्वामी महाराज, श्रीश्रीगौर-राधा-विनोदविहारीजी एवं श्रीश्रीजगन्नाथ-बलदेव-सुभद्रादेवी अर्चाविग्रहके रूपमें पृथक्-पृथक् सिंहासनपर विराजित होकर सम्पूजित हो रहे हैं। श्रीविग्रहोंके निवास-स्थानको देवालय, देवगृह या श्रीमन्दिर कहा जाता है। मठ और मन्दिर बहुत तात्पर्यपूर्ण शब्द हैं। '*मठन्ति वसन्ति छात्राः*'—जहाँ पारमार्थिक छात्र या शिष्यगण निवास करते हुए वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं, उस स्थानको 'मठ' कहा जाता है। पुनः उन शिष्योंके उपासनाका स्थल, उनके उपास्यगणकी अवस्थिति-क्षेत्रका नाम ही श्रीमन्दिर है।

पृथ्वीपर सर्वत्र ऐसे सनातन-धर्म प्रचार-केन्द्र प्रतिष्ठित होना सभीके लिये मङ्गलकारी है।

श्रीपत्रिकाके तीन श्रेणीके पाठक और उनके दृष्टिकोण

तीन श्रेणीके व्यक्ति 'श्रीगौड़ीय-पत्रिका' आदि पारमार्थिक सामयिक पत्रिकाओंपर विचार-विमर्श करते हैं। (१) प्रथमतः, ऐतिहासिक और साहित्यिकगण अपनी जिज्ञासाको शान्त करनेके लिये इनकी विवेचनामें प्रवृत्त होते हैं; (२) तथाकथित अनुसन्धानकर्ता अपनी यथेच्छ-रुचि और भावधाराके अनुकूल या प्रतिकूल विवेचनाकी दृष्टिभङ्गी द्वारा इनका पठन-पाठन करते हैं एवं (३) तृतीय श्रेणीके व्यक्तिगण अपने तथा अन्योंके वास्तव आत्मकल्याणके लिये इनका अनुशीलन करनेमें प्रयत्नशील होते हैं। साधु-गुरु-शास्त्रके वाक्योंसे ज्ञात होता है कि अचैतन्य विश्वमें जड़वादकी सोचमें डूबकर उसका बहुत सम्मान करनेसे पारमार्थिक कल्याण या उसके अन्तर्निहित भावकी उपलब्धि सम्भवपर नहीं होती। आधुनिक युगमें देशी-विदेशी अनेक बुद्धिजीवी व्यक्ति अपने लौकिक स्वाधीन विचारधारा, बुद्धिमता और प्रतिष्ठा (reputation) के अनुरूप अप्राकृत-तत्त्वकी विवेचना करनेका प्रयास करते हैं, परन्तु विफल होकर अन्तमें वञ्चित होते हैं। वे सर्वत्र ही भावोंकी सुन्दर शब्दों द्वारा प्रस्तुति, ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं पुरातन तत्त्वोंके ज्ञानमें निपुणता और सुननेमें मधुर लगनेवाले सामान्य लोकप्रवादों आदिके ऊपर निर्भर करते हुए अपने-अपने मतोंको स्थापित और प्रकाशित करनेमें व्यस्त रहते हैं। आज अधिकांश शिक्षित व्यक्ति सनातन आत्मधर्मके विषयमें अनेकों कल्पित, भ्रान्त और विकृत मतोंका पोषण करते हैं, कोई-कोई तो इस विषयमें सम्पूर्ण अज्ञ और उदासीन हैं—यह विशेष दुःखका विषय है। आजकल पाठकगण सहज और सुखपाठ्य भाषा, आख्यान-उपाख्यान (किस्से-कहानियों) तथा काल्पनिक तथ्यों आदिके प्रति अधिक आकर्षित होते हैं। दार्शनिक विचार और तत्त्व-सिद्धान्त स्वाभाविक रूपसे ही कठिन और समझनेमें कष्टकर हैं, अतः इस सम्बन्धमें विवेचना आरम्भ होनेपर सरल कथा-साहित्यके समालोचक श्रोताओंका सिरदर्द आरम्भ हो जाता है। वास्तव सत्यके अनुसन्धानके प्रति ऐसी अनिच्छा और उदासीनताने आज हमें प्रगतिके नामपर अधोगतिकी ओर धकेल दिया है।

जागतिक प्रगति और प्रभुत्वकी इच्छा ही आज जगत्में संघर्ष और विविध असुविधाओंको जन्म दे रही है। पाश्चात्य देशोंकी परस्पर विवादमें व्यस्त गोष्ठियोंका क्रमशः बढ़ता हुआ असन्तोष और स्वयंको सर्वोच्च सिद्ध करनेकी वृत्ति वर्तमान समयमें पूर्वी देशोंमें भी युद्धकी अग्निको जन्म देते हुए सबको ध्वंस कर देनेवाली शिखाको विस्तृत कर रही है। आज उसकी प्रचण्डताको समस्त विश्ववासी अनुभव करते हुए विश्वयुद्धकी आशंकामें चिन्ताग्रस्त हो रहे हैं। जड़ीय वैज्ञानिक उन्नति विश्वशान्तिकी धारक-वाहक तो नहीं बन पा रही है, यहाँ तक कि व्यक्तिगत सुख और स्वतन्त्रताके भी न्यूनतम अधिकारको सुनिश्चित करानेमें अक्षम हो रही है। Automation (स्वचालित यन्त्रों) और Computer के प्रयोगने आज साधारण परिश्रमी मनुष्यके मुखसे भोजन छीनकर उसे जड़-पङ्गु (असमर्थ-सा) कर दिया है। जड़विज्ञानकी यह तथाकथित उन्नति भगवान्की श्रेष्ठ सृष्टि मनुष्य-समाजको उसके सरल-सहज रूपमें जीवनयापन करते हुए पारमार्थिक उन्नति रूपी मूलभूत अधिकारसे वञ्चित कर रही है।

श्रीमन्महाप्रभुका विमल प्रेमधर्म ही विश्वशान्ति लानेमें समर्थ

भौतिकतावाद अथवा तर्कयुगके इस महासङ्कटके समय श्रीकृष्णचैतन्यके निजजनोंने श्रीकृष्णचैतन्यकी

अप्राकृत शिक्षामृतधारा और असमोर्द्ध्व करुणाकी कथाको समग्र जगत्‌में वितरण करनेका दृढ़ सङ्कल्प ग्रहण किया है। यही कार्य अनन्त विश्वको प्लावित करेगा एवं विश्वशान्ति लानेमें समर्थ होगा, इस विषयमें कोई संशय नहीं है। श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षाकी कोई तुलना नहीं है, यह एकसाथ ही सहज, सरल और गम्भीर है। निरक्षर मनुष्यसे लेकर तर्क-विचार-शास्त्रज्ञानमें पारदर्शी पण्डित-मण्डली, गृहस्थ, त्यागी, बालक-वृद्ध-युवक, स्त्री-पुरुष, किसी भी जाति-वर्ण-धर्मके सभी लोग इसका आचरण करते हुए आत्यन्तिक (परम) मङ्गल प्राप्त कर सकते हैं। निरपेक्ष और निष्कपट होनेपर श्रीमन्महाप्रभुके आचरित और प्रचारित धर्मको ही परमधर्मके रूपमें अनुभव किया जा सकता है। इसीलिए श्रील कविराज गोस्वामीने कहा है—'*चैतन्यचन्द्रेर दया करह विचार। विचार करिले चित्ते पाबे चमत्कार॥*' (चै.च.आदि. ८/१५) [अर्थात् जो लोग प्रधानतः प्रत्यक्ष और अनुमानको ही नींव अथवा आश्रय मानकर यथार्थ आश्रयका निर्धारण करते हैं, उन सबको सम्बोधित करते हुए श्रील कविराज गोस्वामी कहते हैं कि जिनमें दृष्टि है, विचार करनेकी शक्ति है, जिन्होंने समस्त प्रकारकी दयाके सभी स्वरूपोंका अनुभव किया है अथवा उसे देखनेका सामर्थ्य और सुयोग प्राप्त किया है, वे सभी प्रकारकी दयाकी सूची बनाकर तुलना करनेपर जान पायेंगे कि श्रीगौरहरिकी दया किसी सृष्ट वस्तुमें अथवा सृष्टिकर्तामें अथवा अवतारोंमें अथवा अवतारी श्रीकृष्णमें भी नहीं है। उदार-विग्रह श्रीगौरहरिकी दया निश्चय ही सबसे अधिक विस्मय और चमत्कारिताका आह्वान करती है। (श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद द्वारा लिखित अनुभाष्य)] '*तटस्थ हइया विचारिले आछे तर-तम।*' (चै.च.मध्य. ८/८३) [अर्थात् निरपेक्ष (तटस्थ) होकर विचार करनेसे पूर्वोक्त समस्त प्रकारकी दयामें तारतम्य दीखता है अर्थात् श्रीकृष्ण एवं उनके समस्त अवतारोंकी दया श्रेष्ठ होनेपर भी निरपेक्ष विचारसे श्रीमन्महाप्रभुकी दया ही सर्वोत्तम है।] अतएव, पराशान्ति-पिपासु व्यक्ति श्रीगौरसुन्दरके विमल प्रेमधर्मके आचरण और प्रचारसे अवश्य ही कृतकृतार्थ होंगे।

श्रीगौरहरि और उनके भक्तोंकी दया अतुलनीय

'*भारत-भूमिते हैल मनुष्य जन्म जार। जन्म सार्थक करि कर पर-उपकार॥* (चै.च.आदि. ९/४१)' अर्थात् श्रीभगवान्‌के विभिन्न अवतारों और आर्य-ऋषियोंके वासस्थान एवं उनकी आविर्भाव-स्थली, सनातन धर्मक्षेत्र भारतभूमिमें जन्म लेनेवाले प्रत्येक मनुष्यका अवश्य पालनीय कर्तव्य है कि वह अपना जन्म सार्थक करते हुए अन्य मनुष्योंको कृष्णोन्मुख करे। इस विषयमें जगद्गुरु श्रील सरस्वती प्रभुपादने बताया है—"श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उपदेश किया हुआ 'उपकार' ही समस्त देशोंमें, समस्त पात्रोंमें, सर्वकालके लिये सर्वश्रेष्ठ उपकार है। यह उपकार किसी एक विशेष देशके लिए तो उपकार है, अन्य देशके लिए उपकार नहीं—ऐसा नहीं है। यह उपकार समग्र विश्व-ब्रह्माण्डका उपकार है। अतः श्रीमन्महाप्रभु और उनके भक्तगण कदापि किसी सङ्कीर्ण, साम्प्रदायिक अथवा नश्वर उपकारका प्रस्ताव नहीं करते। श्रीगौरसुन्दरका उपकार कभी भी किसीका भी 'मन्द' (नष्ट हो जानेवाला तुच्छ या असम्पूर्ण मङ्गल) प्रसव नहीं करता। इसीलिये श्रीगौहरिकी दया 'अमन्दोदय दया' है, इसीलिये महाप्रभु 'महावदान्य' हैं तथा इसीलिये उनके भक्तगण 'महा-महावदान्य' हैं। यह कोई मिथ्या कहानी नहीं है, कविके काव्य-साहित्यकी कल्पना अथवा अतिशयोक्ति नहीं है, यह सर्वश्रेष्ठ सत्यकथा है।"

श्रीमन्महापभु द्वारा अनुमोदित दैव-वर्णाश्रम-धर्म

श्रीचैतन्य महाप्रभुने जाति-वर्ण-आश्रमधर्मके विचारसे निरपेक्ष होकर, सामाजिक दृष्टिसे निम्न अथवा उन्नत,

सभी जनोंको श्रीनामप्रेम वितरण किया है। उन्होंने शास्त्रीय विशुद्ध दैव-वर्णाश्रम-धर्मको स्वीकार करते हुए भक्तों और वैष्णवोंके अप्राकृत स्वरूपकी उपलब्धिके विचारको बतलाया है। सर्वप्रथम सत्ययुगमें सभी एक जातिके थे एवं बादमें गुण-स्वभावके अनुसार वर्णकी उत्पत्ति हुई है—यही शास्त्रीय सत्य है। प्राचीन कालमें व्यक्तिके लक्षणों द्वारा उसकी वृत्तिके अनुसार वर्णका निरूपण किया जाता था। शौक्र, सावित्र्य और दैक्ष्य—ये तीन प्रकारके जन्म हैं। इनमें-से दैक्ष्य जन्ममें पाञ्चरात्रिकी दीक्षाके फलस्वरूप मनुष्यमें सम्बन्ध-ज्ञानका उदय होता है एवं यही उसका पारमार्थिक ब्राह्मण जन्म है। सरलता-कुटिलताके आधारपर ब्राह्मणत्व-शूद्रत्वके निर्धारणका विचार है एवं लौकिक-पारमार्थिक दोनों क्षेत्रोंमें यही विचार उपयुक्त है। आत्मकल्याणकी चेष्टा अथवा स्वरूप-उपलब्धिके विषयमें भौतिक गुणोंसे अतीत भगवद्-दास्य ही एकमात्र प्रार्थनीय है।

तथाकथित धर्म-संस्कारकगण और श्रीचैतन्यदेव

साधारण मानव-समाज और वैष्णव-समाजमें आकाश-पातालका अन्तर है। वैष्णवोंका चरम लक्ष्य है—भगवत्-प्रेमकी प्राप्ति, जबकि समाजके अन्य साधारण लोगोंका उद्देश्य है—जड़-इन्द्रियोंकी कामना-वासनाओंकी पूर्ति करना। कर्मजड़ स्मार्त्त-समाज अपनी फूटी कोड़ीके मूल्य वाली अतिसामान्य जागतिक सम्पदको ही बहुत बड़ी सम्पत्ति मान बैठा है। दूसरी और, महावदान्य, परदुःखदुःखी मुनिऋषि, साधु-महापुरुष, नित्यसिद्ध महात्मागण उदार-नैतिक मनोभावसे युक्त होकर अनन्त जीवात्माओंको भगवद्-दास्यरूपी उनके नित्य अधिकारमें प्रतिष्ठित करानेके लिये कृतसङ्कल्प हैं। सनातन-धर्मका किसी प्रकार परिवर्तन-परिवर्धन नहीं हो सकता। तथाकथित धर्म-संस्कारकगण धर्मका संस्कार करने जाकर "निर्विशेष-ब्रह्म"रूपी दैत्य-दानवकी वृत्तिसे ग्रस्त होकर अन्तमें म्लेच्छाचार ग्रहण करते हुए चरम दुर्दशाको अङ्गीकार करते हैं। इस 'धन्य कलियुग' में घनीभूत प्रेमकी मूर्ति स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपनी सर्वशक्तिका प्रयोग करते हुए जीवके समस्त सामाजिक अकल्याणोंको दूर किया है। "*ब्राह्मणे चण्डाले करे कोलाकुलि, कबे वा छिल ए रङ्ग!* [अर्थात् (श्रीमन्महाप्रभु द्वारा मुक्तहस्तसे वितरित कृष्णप्रेममें विभावित होकर) ब्राह्मण भी अपने कुलका अभिमान त्यागकर एक चाण्डालको आलिङ्गन करने लगे, कहो, क्या इससे पहले कभी ऐसी अद्भुत बात हुई!"—(श्रीप्रेमानन्द दास ठाकुर कृत 'एमन गौराङ्ग बिना नाहि आर')]

श्रील जयदेव गोस्वामीके हृदयमें श्रीगौरसुन्दरके प्रेमधर्मका प्रकाश

श्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भावसे पूर्व समयके वास्तविक-कवि अप्राकृत प्रेमरसिक श्रील जयदेव गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभु गौरसुन्दरके मनोऽभीष्टको पूर्ण किया है। श्रीगीतगोविन्दमें '*देहि पद-पल्लवमुदारम्*' पदको पूर्ण करनेकी लीलासे हम जान सकते हैं कि उन्होंने रागमार्गमें श्रीराधामाधवकी अप्राकृत सेवामें अधिकार प्राप्त किया था। पद्मावती देवीके साथ ये महापुरुष गौड़ीय-वैष्णव जगत्में महाजनके रूपमें समादृत और सम्पूजित हैं। श्रीचैतन्यदेवने कवि श्रीजयदेव गोस्वामीके हृदयमें उदित होकर श्रीगीतगोविन्दके मङ्गलाचरणमें अपनी (श्रीचैतन्यदेव) की आगमन-गीतिका गान किया है, ऐसा सङ्केत मिलता है। श्रील सरस्वती प्रभुपादने लिखा है—"गौड़ीयोंके आराध्य श्रीराधाकृष्ण-अभिन्नतनु श्रीगौरसुन्दरने अप्राकृत वृन्दावनलीलाकी जो समस्त कथाएँ कही हैं, वह श्रीमद्भागवत और गीतगोविन्दका पूर्णतम विकास है।" श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने बताया है—"श्रीजयदेव, श्रीबिल्वमङ्गल, श्रीचण्डीदास, श्रीविद्यापति, श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद आदि

शुद्धभक्तोंके हृदयमें महाप्रभुका भावोदय था।" कवि जयदेवने श्रीनवद्वीपधाममें श्रीराधामाधवकी भावसेवा करते-करते श्रीगौरसुन्दरका दर्शन प्राप्त किया था। वही भगवान् श्रीविग्रह और श्रीनामब्रह्मके रूपमें जगत्‌में प्रकटित हैं।

सोलहनाम-बत्तीस-अक्षरात्मक श्रीहरिनाम महामन्त्र ही जप्य और कीर्तनीय

श्रीपत्रिकाको बत्तीसवें वर्षमें प्रवेश करते देखकर हमें सोलहनाम बत्तीस-अक्षर-विशिष्ट श्रीनामब्रह्मकी आराधनाकी बात स्मरण हो रही है। 'कलियुगके तारकब्रह्म महामन्त्रकी साधनासे ही नामी परब्रह्मका साक्षात्कार प्राप्त होता है'—यही श्रीरूपानुग गौड़ीय-वैष्णवोंने विशेषरूपसे बताया है। 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥'—यह हरिनाम महामन्त्र नित्य जप्य और कीर्तनीय है। इस विषयमें विविध शास्त्रोंमें विधान दिया गया है। '*नामसङ्कीर्त्तन देव तारकं ब्रह्म दृश्यते।* अर्थात् हे देव! श्रीहरिके नामोंका सङ्कीर्तन ही इस कलियुगके तारक-ब्रह्मके रूपमें जाना जाता है (ब्रह्माण्ड पुराण, ६/५९-६०)', '*हरिनाम महामन्त्रैर्नश्येत् पाप-पिशाचकम्। हरेरग्रे स्वरैरुच्चैर्नृत्यंस्तन्नामकृन्नरः। पुनाति भुवनं विप्रा गङ्गादि सलिलं यथा॥* अर्थात् हरिनाम-महामन्त्रके द्वारा पापरूपी पिशाचोंका समुदाय नष्ट हो जाता है। भगवान्‌के सामने उच्चस्वरसे उनके नामोंका कीर्तन करते हुए नृत्य करनेवाला मनुष्य गङ्गा आदि नदियोंके जलकी भाँति समस्त संसारको पवित्र कर देता है। (पद्म पुराण, स्वर्ग खण्ड ५०/६, ५०/१२)' '*एतन्नामानि हर्षेण कीर्त्तयित्वा मुहुर्मुहुः। सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठं श्रीहरिनामकम्॥* अर्थात् हरिनामका पुनःपुनः हर्षपूर्वक कीर्तन करना ही कर्तव्य है, श्रीहरिनाम समस्त मन्त्रोंमें सर्वश्रेष्ठ है' आदि शास्त्रवाक्योंमें इस महामन्त्रका उच्च-स्वरसे कीर्तन करनेका विधान वर्णित हुआ है। 'हरिनाम महामन्त्रके जपसे ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यानसे कीर्तन श्रेष्ठ है—इस विषयमें भी शास्त्रोंमें अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत 'श्रीहरिनामार्थ-दीपिका' ग्रन्थमें लिखित है—"श्रीमती राधा ठाकुरानी श्रीकृष्णके अदर्शन-जनित विरहसे कातर होकर बहुत चिन्तन करनेके पश्चात् अन्तमें इस तारकब्रह्म नामको ही श्रीकृष्णप्राप्तिका प्रकृष्ट उपाय मानती हैं एवं स्वयं कलिकालके तारकब्रह्म नामयुक्त इस महामन्त्रको ही सर्वदा ग्रहण करती रहती हैं।" 'हरे', 'कृष्ण', 'राम'—इन शब्दोंकी व्याख्या भी इस प्रकार की गयी है— "*कृष्णमन हरे जेइ आह्लादरूपिणी। 'हरे' शब्दे हय सेइ राधा ठाकुरानी॥ कृ—आदि गोपीगणेर रत्न पुष्टि करे। अतएव 'कृष्ण' नाम बलि जे ताहारे॥ राधिकार सङ्ग सदा करये रमण। अतएव 'राम' नाम कहि से कारण॥*" [महामन्त्रके अन्तर्गत उच्चारित 'हरे' नामक प्रथम शब्द श्रीकृष्णके मनका हरण करनेवाली आह्लादस्वरूपिणी 'हरा' श्रीराधा ठाकुरानीके उद्देश्यसे प्रयुक्त हुआ है। महामन्त्रके अन्तर्गत उच्चारित द्वितीय शब्द 'कृष्ण' अपनी अनेकानेक क्रियाओंके द्वारा गोपियोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग, हाव-भाव, प्रणय-कोप रूपी मान नामक रत्नोंकी पुष्टि करनेवाले राधानाथके उद्देश्यसे प्रयुक्त हुआ है। महामन्त्रके अन्तर्गत उच्चारित 'राम' नामक अन्य शब्द श्रीराधिकाके साथ सदा रमण करनेवाले श्रीकृष्णके उद्देश्यसे प्रयुक्त हुआ है।]

अतः 'श्रीरूपानुग गुरुवर्गके आनुगत्यमें चित्-लीला-मिथुन श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीजी एवं श्रीगौरसुन्दरकी अप्राकृत सेवाका अधिकार हमें कब प्राप्त होगा!'—हृदयमें यह अभिलाषा रखते हुए नववर्षका निवेदन समाप्त कर रहा हूँ।

(श्रीगौड़ीय-पत्रिका, वर्ष-३२ संख्या-१ से अनुदित)

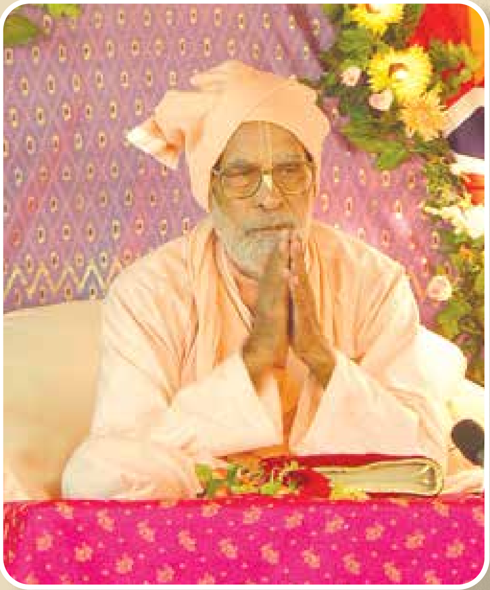

अद्वयज्ञान परतत्त्व

(ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्‌के सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर)

प्रश्नः श्रीबिहारीलाल उनियाल

सेवामें, मई, १९५७

श्रीमान् भागवत-पत्रिकाके सम्पादक महोदयजी,

चरणकमलोंमें प्रणामपूर्वक निवेदन,

ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इनमें किसकी आराधना उत्तम है? आप कृपा करके अलग-अलग यह भी बतलायें कि ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् किसे कहते हैं और इनके क्या-क्या कार्य हैं? मुझ मूढ़ और मलिन बुद्धिवाले जीवको आप यथार्थ और सरल शब्दोंमें समझानेकी कृपा करेंगे।

वैष्णव-कृपा-प्रार्थी,
श्रीबिहारी लाल उनियाल,
देहरादून।

उत्तरः श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज (श्रील गुरुदेव)

चित्-अचित् समस्त जगत्‌के मूल कारण, सबके एकमात्र परम उपास्य तत्त्वको शास्त्रोंमें 'अद्वयज्ञान' वस्तु कहा गया है। 'अद्वयज्ञान' से अभेदवाद नहीं समझना चाहिए। केवल-अभेदवाद वेद-विरुद्ध एक भ्रान्त मतवाद है। जीव और जगत्‌का परब्रह्मसे भेद और अभेद दोनों एक ही साथ सत्य हैं। जीव और जगत् भगवान्‌की शक्तिसे उत्पन्न होते हैं। इसलिये मूल तत्त्व निर्विशेष नहीं अपितु नित्य सविशेष है।

जीवकी अवस्था दो प्रकारकी होती है—(१) शुद्ध अवस्था एवं (२) अशुद्ध अवस्था। शुद्ध अवस्थाको मुक्तावस्था और अशुद्ध अवस्थाको बद्धावस्था भी कहते हैं। बद्धावस्थामें जीवोंका स्वरूप माया द्वारा ढका रहता है। इसलिये बद्धजीव न तो अपना स्वरूप अनुभव कर पाता है और न 'तत्त्व-वस्तु' का ही दर्शन कर पाता है। पूर्ण-शुद्ध अवस्थामें मायाका कोई प्रभाव नहीं रहता। इसलिये पूर्ण-मुक्तावस्थामें जीव अपने और परम तत्त्व-वस्तुके यथार्थ स्वरूपका दर्शन करता है। उपरोक्त 'अद्वयज्ञान'-वस्तुका पूर्णतम दर्शन ही जीवोंके लिये पूर्ण दर्शन है। यही पूर्णतम तत्त्व-वस्तु जीवोंका सर्वोत्तम उपास्य तत्त्व है।

जीव जब अशुद्धावस्थासे शुद्धावस्थाकी ओर अग्रसर होता है, तब उसके भिन्न-भिन्न अधिकार परिलक्षित होते हैं। इन विभिन्न अधिकारोंमें अवस्थित जीव अपने-अपने अधिकारके अनुसार एक ही 'अद्वयज्ञान' तत्त्व-वस्तुको भिन्न-भिन्न रूपोंमें दर्शन करते हैं। जीवोंके इन समस्त अधिकारोंको प्रधान रूपसे तीन भागोंमें विभक्त किया गया है। ये तीन विभाग हैं—ज्ञान, योग और भक्ति।

उपरोक्त तीन प्रकारके अधिकारियोंमें-से प्रत्येक अधिकारी एक ही अद्वयज्ञान-तत्त्वको अपने-अपने अधिकारके अनुसार एक-दूसरेसे भिन्न रूपमें दर्शन करता है। ज्ञानाधिकारी जीव उसे 'ब्रह्म'के रूपमें देखता है, योगाधिकारी उसे 'परमात्मा'के रूपमें देखता है तथा भक्तिका अधिकारी उसीको 'भगवान्'के रूपमें दर्शन करता है।

उदाहरणसे विषयको समझनेमें सरलता होगी, यथा—हिमालय पर्वतको बहुत दूरसे, कुछ और निकटसे और सन्निकटसे देखना। जो बहुत दूरसे हिमालय पर्वतको देखते हैं, वे उसे विचित्रता-रहित या विशेषता-शून्य एक काली छायाके रूपमें दर्शन करते हैं; जो कुछ निकटसे दर्शन करते हैं, वे उसे सामान्य आकारके रूपमें दर्शन करते हैं और जो अति-निकटसे अथवा पर्वतपर चढ़कर दर्शन करते हैं, वे विचित्र-विचित्र वनस्पतियों, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, नदी-झरनों, वृक्ष, पर्वतशृङ्ग और कन्दराओं आदिसे युक्त हिमालयका दर्शन करते हैं। उसी प्रकार 'अद्वयज्ञान' तत्त्व-वस्तुको अधिक दूरसे देखनेवाला उसे ब्रह्मके रूपमें दर्शन करता है। ब्रह्म-दर्शनमें पूर्णतम वस्तुकी अङ्गकान्ति अर्थात् अङ्गकी ज्योतिमात्रका दर्शन होता है, साक्षात् वस्तुका नहीं। कुछ और निकटसे देखनेवाला उस तत्त्वको अङ्गुष्ठ परिमाण पुरुष अर्थात् परमात्माके रूपमें दर्शन करता है, किन्तु अति सन्निकटसे देखनेवाला उसी अद्वयज्ञान - तत्त्वको उसके नाम, रूप, गुण, लीला और परिकर आदिसे युक्त विचित्र विलासपूर्ण भगवान्के रूपमें दर्शन करता है।

दूसरा उदाहरण—इस विषयको समझानेके लिये शास्त्रकारोंने परमतत्त्वकी 'वैदुर्यमणि'स[१] उपमा दी है। भिन्न-भिन्न स्थानोंसे देखनेसे एक ही 'वैदुर्यमणि' भिन्न-भिन्न रङ्गोंवाली दीखती है। उसी प्रकार 'अद्वयज्ञान' भगवत्स्वरूप भी जीवोंके अधिकार-भेदसे ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्के रूपमें प्रकाशित होता है।

ब्रह्म और भगवान्

ब्रह्म—अद्वयज्ञान तत्त्वका एक आंशिक प्रकाश है। इससे वस्तुके पूर्णतम स्वरूपकी अभिव्यक्ति नहीं होती। 'ब्रह्म' शब्दसे जड़ीय नाम, रूप, गुण और क्रिया आदिसे रहित केवल एक निर्विशेष भाव अथवा गुणका बोध होता है। जैसे चर्म-चक्षुओंसे सूर्य निर्विशेष ज्योति-स्वरूप दीख पड़ते हैं, ठीक वैसे ही ज्ञानमार्गमें अद्वयज्ञान भगवान्का एक निर्विशेष भाव प्रकाशित होता है। यही नहीं, मङ्गल ग्रहको ही ले लो। हम लोग पृथ्वीसे इसे एक ज्योतिर्मय ग्रहके रूपमें देखते हैं, किन्तु आजके जड़ विज्ञानिकोंके द्वारा यह पता लगाया गया है कि मङ्गल ग्रह भी हमारी पृथ्वीकी तरह है। वहाँ भी पर्वत हैं, नदियाँ हैं, वृक्ष हैं और तरह-तरहके जीव-जन्तु हैं। अतएव निर्विशेष ब्रह्मकी प्रतीति या दर्शन अधिक दूरी होने अर्थात् निम्न अधिकारके कारण ही होता है—यह स्पष्ट है। किन्तु भक्ति-चक्षु प्राप्त होनेपर निर्विशेष ब्रह्मज्योतिको भेदकर जीव उसके भीतर ज्योतिके आधार अखिलरसामृतमूर्त्ति भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करता है—

१ वैदुर्यमणि एक विशेष प्रकारका रत्न है जो बिल्ली की आँख जैसी चमक और एक धारक लिए जाना जाता है। पॉलिश करने पर यह रङ्गहीन, शहद जैसा सुनहरा, धूसर या हरा दिखाई देता है।

वेदान्त, श्रीमद्भागवत और गीता आदि शास्त्रोंसे यही प्रतिपादित होता है कि 'ब्रह्म' स्वयं कोई वस्तु नहीं है, वह अद्वयज्ञान रूप भगवत्-तत्त्वका एक गुणमात्र है। भगवान् गुणी हैं, ब्रह्म उनका गुण हैं।

'ज्योतिऽभ्यन्तरे रूपं अतुलं श्यामसुन्दरम्।'

श्रीनारदपञ्चरात्र, प्रथम रात्र (१/३)

[मैं उन परब्रह्मका ध्यान करता हूँ, जिनका अतुलनीय श्रीश्यामसुन्दर स्वरूप ब्रह्म-ज्योतिके भीतर विद्यमान है।]

तब क्या ब्रह्म एक भाव या गुण है? हाँ, वेदान्त, श्रीमद्भागवत और गीता आदि शास्त्रोंसे यही प्रतिपादित होता है कि 'ब्रह्म' स्वयं कोई वस्तु नहीं है, वह अद्वयज्ञान रूप भगवत्-तत्त्वका एक गुणमात्र है। भगवान् गुणी हैं, ब्रह्म उनका गुण हैं। इसीलिए आचार्य यामुनमुनिने आलवन्दार स्तोत्र (श्लोक १७) में ब्रह्मको श्रीनारायणकी एक विभूति माना है—

'परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः।'

[हे नारायण! प्रकृति, पुरुष, परमधाम वैकुण्ठ तथा परात्पर ब्रह्म, ये सभी आप (भगवान्) की विभूतियाँ हैं।]

गुणकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। वह गुणीका आश्रय करके रहता है। अतएव ब्रह्म भगवान्‌को आश्रय करके रहता है।

भगवान् हैं कौन? श्रीमद्भागवत (१/३३/२८) में इसका समाधान करते हुए कहा गया है—

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं।'

कृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं। यहाँ 'तु' का प्रयोग निश्चयके अर्थमें किया गया है अर्थात् इसे निश्चय ही जानो कि कृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं, अन्य कोई भी नहीं।

'ब्रह्म-संहिता' में इसे इस प्रकार कहा गया है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

(ब्रह्मसंहिता ५/१)

सच्चिदानन्दघन मूर्त्ति श्रीकृष्ण समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर अर्थात् परम ईश्वर हैं। प्रकृति और पुरुष आदि जो जगत्‌के मूल कारण कहे जाते हैं, श्रीकृष्ण उन समस्त

कारणोंके भी आदि कारण हैं। वे स्वयं अनादि हैं—स्वयं प्रकाश हैं, उनके ऊपर और कोई कारण नहीं है।

उन्हीं श्रीकृष्णमें भगवत्ताका चरम विकास है। वे अनन्त दिव्य गुणोंके आधार हैं। उनमें असंख्य दिव्य गुण प्रतिष्ठित हैं। यह बात इस प्रकार भी कही जा सकती है कि श्रीकृष्ण असंख्य दिव्य गुणोंकी प्रतिष्ठा (आधार) हैं। ब्रह्म—इन्हीं अनन्त दिव्य गुणोंमें-से एक गुण है।

गीतामें इस सिद्धान्तका प्रतिपादन इन शब्दोंमें किया गया है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(गीता १४/२७)

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको बतला रहे हैं—तुम्हारे सामने खड़ा हुआ सच्चिदानन्दघनमूर्त्ति—मैं श्रीकृष्ण ही केवल चित्-स्वरूप ब्रह्मकी, शाश्वत धर्मकी और एकान्तिक सुखकी प्रतिष्ठा (मूल कारण) हूँ।

इस विषयको और भी स्पष्ट रूपमें समझिये—भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दकी घनमूर्त्ति हैं। सच्चिदानन्द अर्थात् सत्+चित्+आनन्द। इन तीनोंमें 'चित्' का अर्थ है 'ज्ञान'। इसी ज्ञानकी एक खण्ड प्रतीतिका नाम 'ब्रह्म' है। इसीलिए श्रीकृष्ण—ब्रह्मकी प्रतिष्ठा (मूल कारण या आधार) हैं।

ब्रह्म-संहिताका सिद्धान्त देखिये—

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेष वसुधादि विभूतिभिन्नम्।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(ब्रह्मसंहिता ५/४०)

जिनकी प्रभा (अङ्गकी ज्योति) से उत्पन्न होकर निर्विशेष ब्रह्म कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके भीतर पृथ्वी आदि विभूतियोंसे पृथक् निरुपाधि, अशेष और अनन्त तत्त्वके रूपमें प्रतीत होता है, उन आदि पुरुष गोविन्द—श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ।

उपनिषद्के द्रष्टाओंने श्रीकृष्णके 'ब्रह्म' नामक इस आंशिक भावकी ही प्रधान रूपसे चर्चा की है। वे लोग 'ब्रह्म-भाव' में इतने निमग्न हो गये हैं कि इससे परे भी कुछ है—वे इसकी ओर ध्यान ही नहीं दे सके हैं। वे इस आंशिक भावको ही सर्वस्व मान बैठे हैं। किन्तु श्रीकृष्णके अप्राकृत नाम, रूप, गुण, लीला और धाम जैसे अन्यान्य भावोंके अनुभवी श्रीवेदव्यासने स्पष्ट ही कहा है—

'अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम्।'

(श्रीमद्भागवतम् १०/१३/५४)

अर्थात् गोवत्सोंको हरण करनेके पश्चात् श्रीकृष्णकी शरणमें आये हुए ब्रह्माजीने जिन श्रीकृष्ण मूर्त्तियोंका दर्शन किया, उनकी महिमाको उपनिषदोंके द्रष्टा तक स्पर्श नहीं कर सके हैं।

नीचे शास्त्रोंसे कुछ ऐसे वचन दिये जा रहे हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण ब्रह्मकी अपेक्षा परम तत्त्व हैं—

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
सङ्क्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥

(श्रीमद्भागवतम् ३/१५/४३)

अर्थात् सनकादि मुनीश्वर निरन्तर ब्रह्मानन्दमें निमग्न रहा करते थे। किन्तु जिस समय भगवान् कमलनयनके चरणारविन्दसे मिली हुई तुलसी-मञ्जरीकी गन्धसे सुवासित वायुने नासिका-रन्ध्रोंके द्वारा उनके अन्तःकरणमें प्रवेश किया, उस समय वे अपने शरीरको सम्भाल न सके और उस दिव्यगन्धने उनके चित्तको विचलित कर दिया।

यहाँ भगवान्के चरणोंमें अर्पित तुलसीकी सुगन्धसे ब्रह्मके उपासक सनकादिके चित्तका विचलित होना

शास्त्रोंमें बहुधा परब्रह्म, पूर्णब्रह्म, परमब्रह्म और परमात्मा शब्दोंके व्यवहार देखे जाते हैं, किन्तु परम 'भगवान्' शब्दका प्रयोग कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता और जहाँ 'ब्रह्म' का प्रयोग निर्विशेष-तत्त्वके लिये हुआ है, वहाँ 'परब्रह्म', 'परमब्रह्म' अथवा 'पूर्णब्रह्म' का प्रयोग पूर्णतम और सविशेष-तत्त्व—श्रीभगवान्के लिये ही किया गया है।

बताया गया है। इससे ब्रह्मकी अपेक्षा भगवान्की श्रेष्ठता स्पष्ट सूचित होती है।

दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः॥
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा॥

(श्रीमद्भागवतम् १०/२८/१४-१६)

[श्रीकृष्णने उन गोपोंको प्रकृतिसे अतीत ब्रह्म-स्वरूप अपने वैकुण्ठ-लोकका दर्शन कराया। वह स्थान चिन्मय, अखण्ड, स्वप्रकाश, नित्य और ब्रह्मस्वरूप है, जिसका मुनिगण गुणातीत होनेपर ही समाधिमें दर्शन कर पाते हैं। हे परीक्षित्! श्रीकृष्णने उसी स्थानपर उन गोपोंको अपने ब्रह्मस्वरूपका दर्शन कराया जहाँ अक्रूरने जलमें निमग्न होकर श्रीकृष्णके ब्रह्मस्वरूपका दर्शन किया था।]

यहाँ '*सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म*' को ज्योति-स्वरूप माननेसे तथा गोपोंके भगवद्धाम दर्शनसे ब्रह्मलोककी अपेक्षा भगवद्धामकी महिमा अधिक सिद्ध होती है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मदभक्तिं लभते पराम्॥

(गीता १८/५४)

[ब्रह्ममें अवस्थित प्रसन्नचित्त व्यक्ति न तो शोक करते हैं और न ही आकांक्षा करते हैं। वे सभी प्राणियोंमें समदर्शी होकर प्रेमलक्षणयुक्त मेरी भक्ति प्राप्त करते हैं।]

यहाँ ब्रह्मभूत साधकको भक्तिकी प्राप्ति होनेके कथनसे ब्रह्मकी अपेक्षा श्रीकृष्णकी अधिक महिमा सुस्पष्ट है।

परमात्मा और भगवान्

जिस प्रकार अनन्त स्फटिक खण्डोंपर एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित होकर पृथक्-पृथक् प्रकाशित होता है,

उसी प्रकार अद्वयज्ञान-तत्त्व भगवान् श्रीकृष्णका अंश ही अनन्त संख्यक व्यष्टि (अर्थात् पृथक्-पृथक्) जीवों और जड़ पदार्थोंमें प्रतिफलित होकर उनके अन्तर्यामी-परमात्माके रूपमें प्रकाशित होता है। इसी अन्तर्यामी पुरुषको योगीगण ध्यानयोग द्वारा अङ्गुष्ठ परिमाण परमात्माके रूपमें दर्शन करते हैं।

निम्नलिखित शास्त्रीय वचनोंसे उपरोक्त कथनकी पुष्टि होती है तथा परमात्म-तत्त्वसे भगवत्-तत्त्वकी श्रेष्ठता प्रमाणित होती है—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता १०/४२)

[अथवा, हे अर्जुन! इस पृथक्-पृथक् उपदिष्ट ज्ञानसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है? तुम मात्र इतना जानो कि मैं अपने एकांश (परमात्मा रूप) से इस समस्त जगत्को धारण कर अवस्थित हूँ।]

यहाँ श्रीकृष्णके एक अंशसे (परमात्माके रूपमें) अखिल जीव और जड़में प्रविष्ट होनेके कथन द्वारा परमात्माकी अपेक्षा कृष्णकी महत्ता अत्यन्त स्पष्ट है।

तमिममहमजं शरीरभाजां
हृदि हृदि धिष्टितमात्मकल्पितानाम्।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः॥

(श्रीमद्भागवतम् १/९/४२)

[(श्रीभीष्मने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा—) जिस प्रकार एक ही सूर्य अनेक घड़ोंके जलमें पृथक्-पृथक् सूर्यके रूपमें दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार एक ही श्रीकृष्ण प्रत्येक प्राणीके हदयमें अन्तर्यामी रूपमें विराजमान हैं, किन्तु भ्रमवशतः वे अनेक शरीरधारियोंके हृदयोंमें अनेक रूपोंमें जान पड़ते हैं। मैं प्राकृत भेदज्ञानसे उत्पन्न मोहका परित्यागकर उन एक परमात्माको श्रीकृष्णका ही अंश जानकर यहाँ समुपस्थित ऐसे अनादि तथा जन्मरहित श्रीकृष्णकी शरण लेता हूँ।]

यहाँ जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखोंसे अनेक रूपोंमें दिखायी देते हैं, वैसे ही श्रीकृष्णके आंशिक स्वरूप परमात्मा प्रत्येक देहधारी (जीव)के हृदयमें प्रकाशित होकर भिन्न-भिन्न तत्त्वके रूपमें जान पड़ते हैं—

इस कथनसे भी परमात्माके श्रीकृष्णके अंश होनेके कारण कृष्णकी महिमा अधिक प्रकट होती है।

एक और विचार

एक बात और विचारणीय है। शास्त्रोंमें बहुधा परब्रह्म, पूर्णब्रह्म, परमब्रह्म और परमात्मा शब्दोंक व्यवहार देखे जाते हैं, किन्तु परम 'भगवान्' शब्दका प्रयोग कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता और जहाँ 'ब्रह्म' का प्रयोग निर्विशेष-तत्त्वके लिये होता है, वहाँ 'परब्रह्म', 'परमब्रह्म' अथवा 'पूर्णब्रह्म' का प्रयोग पूर्णतम और सविशेष-तत्त्व—श्रीभगवान्के लिये ही किया गया है। नीचे कुछ उदाहरणोंको देखिये—

(क) गीतामें अर्जुन श्रीकृष्णकी वन्दना करते हैं—

"परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।"

(गीता १०/१२४२)

[आप परमब्रह्म, परमधाम तथा परम-पवित्र अर्थात् अविद्या आदि मलको नाश करनेवाले हैं।]

यहाँ कृष्णको परमब्रह्म कहा गया है।

(ख) गोप बालकों तथा गो-वत्सोंका हरण करनेके उपरान्त श्रीकृष्णका अद्भुत ऐश्वर्य दर्शनकर ब्रह्माजी स्तव कर रहे हैं—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥ ३२॥

(श्रीमद्भागवतम् १०/१४/३२)

परमानन्द-स्वरूप, पूर्णब्रह्म, सनातन आप जिनके सुहृद और सगे-सम्बन्धी हैं, उन नन्द-गोपादि प्रमुख व्रजवासियोंका अहो कितना महाभाग्य है! कितना धन्यभाग्य है।

(ग) श्रीरघुपति उपाध्याय नामक एक परम भाग्यशाली भक्तको नन्दभवनमें परम-ब्रह्मकी झाँकी मिली थी। वे मुग्ध होकर बोल उठे थे—

श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥

अर्थात् संसारसे भयभीत होकर भले ही कोई श्रुतिका, कोई स्मृतिका, कोई महाभारतका भजन करे, किन्तु मैं तो नन्दबाबाका भजन करता हूँ, जिनके आङ्गनमें साक्षात् परमब्रह्म विराजमान हैं।

अतएव यहाँ सर्वत्र ही परब्रह्म, परमब्रह्म या पूर्णब्रह्मका व्यवहार भगवान् श्रीकृष्णके लिये ही हुआ है।

सारांश

इन विवेचनोंको संक्षेपमें इस प्रकार कहा जा सकता है—

१)—श्रीकृष्ण ही अद्वयज्ञान तत्त्व-वस्तु हैं।

२)—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक ही अद्वयज्ञान तत्त्व (श्रीकृष्ण) की विभिन्न प्रतीतियाँ हैं।

३)—जीव अपने ज्ञानाधिकारमें श्रीकृष्णकी अङ्गप्रभाको निर्विशेष, निराकार, निर्गुण ब्रह्मके रूपमें दर्शन करता है। ब्रह्म—स्वयं वस्तु नहीं, वस्तुका गुण है। यह भगवद्-दर्शनकी प्रथम प्रतीति है।

४)—जीव योगाधिकारमें श्रीकृष्णके आंशिक स्वरूपको व्यष्टि (पृथक्-पृथक्) जीव और व्यष्टि (पृथक्-पृथक्) जड़में स्थित अङ्गुष्ठ परिमाण परमात्माके रूपमें दर्शन करता है। यह भगवद्-दर्शनकी द्वितीय प्रतीति है।

५)—जीव भक्ति अधिकारमें सर्वगुणोंके आधार निखिल ऐश्वर्य और माधुर्यके आश्रय परम-ब्रह्म श्रीकृष्णका दर्शन करता है, यही जीवका पूर्ण और चरम दर्शन है।

६)—श्रीकृष्ण ही सभी जीवोंके सर्वोत्तम उपास्य तत्त्व हैं।

७)—(क) ब्रह्मतत्त्व निर्विशेष होनेके कारण इसका कोई कार्य नहीं। यह केवल ब्रह्मवादी ज्ञानियोंके दर्शनका विषय होता है।

(ख) परमात्मा प्रत्येक जीवके हृदयमें साक्षीके रूपमें विराजमान होकर जीवोंको उनके कर्मोंके अनुसार फल प्रदान करते हैं।

(ग) भगवान्—समस्त कारणोंके मूलकारण हैं। इनकी शक्तिसे चिद्-अचित्-जगत्के सम्पूर्ण कार्य साधित होते हैं।

अन्तमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके विचारोंको श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके शब्दोंमें व्यक्तकर अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ—

आराध्यो भगवान् व्रजेश तनयस्तद्धाम वृन्दावनं।
रम्या काचिदुपासना व्रजवधुवर्गेण या कल्पिता॥
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं, प्रेमा पुमर्थो महान्।
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही परमाराध्य भगवान् हैं एवं उनका धाम श्रीवृन्दावन [भी उसी प्रकार हमारा परम-उपास्य] है। व्रजकी गोपियोंके द्वारा की गयी उपासना ही सर्वश्रेष्ठ उपासना है। श्रीमद्भागवत ही निर्मल प्रमाण-शास्त्र है। कृष्ण-प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत हमारे लिए परम आदरणीय है।

[श्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष-२, संख्या-१२ (मई १९५७) से उद्धृत]

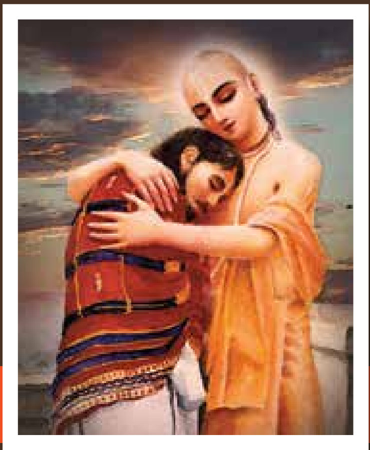

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष-२१, संख्या-१-४ से आगे)

श्रीरघुनाथदासका कठोर वैराग्य एवं साक्षात् श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे उपदेश प्राप्ति

श्रीचैतन्य महाप्रभुके वात्सल्य भावको कौन समझ सकता है! प्रभुने अपने सेवक श्रीगोविन्दसे कहा—"गोविन्द! रघुनाथ भूखा-प्यासा रहकर लम्बी यात्रा करके आया है। उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया है। अतः तुम कुछ दिनतक उसकी देखभाल करो, जिससे कि वह पूर्णरूपसे स्वस्थ हो जाये" तत्पश्चात् उन्होंने श्रीरघुनाथदाससे कहा—"रघुनाथ! तुम पहले जाकर समुद्र स्नान करो। तत्पश्चात् श्रीजगन्नाथका दर्शन करके आकर प्रसाद ग्रहण करो।" ऐसा कहकर श्रीमन्महाप्रभु मध्याह्न कृत्यके लिए उठ गये। तब श्रीरघुनाथदास सब भक्तोंसे मिले। उनपर श्रीमन्महाप्रभुकी असीम कृपा देखकर सभी भक्त उनके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे। तब महाप्रभुके निर्देशानुसार पहले श्रीरघुनाथदासने समुद्रमें स्नान किया। तत्पश्चात् श्रीजगन्नाथका दर्शन करके वे श्रीगोविन्दके पास गये। श्रीगोविन्दने उन्हें महाप्रभुका उच्छिष्ट प्रसाद दिया तथा श्रीरघुनाथने आनन्दपूर्वक उस प्रसादको ग्रहण किया। इस प्रकार श्रीरघुनाथ श्रीस्वरूप दामोदरके आनुगत्यमें रहने लगे। पाँच दिन तक श्रीरघुनाथ प्रतिदिन श्रीगोविन्दके पास आये और श्रीगोविन्दने श्रीरघुनाथको महाप्रभुका अवशिष्ट प्रसाद प्रदान किया। छठे दिनसे श्रीरघुनाथ रात्रिमें श्रीजगन्नाथदेवकी पुष्पाञ्जलि-सेवाका दर्शनकर भोजनकी भिक्षाके लिए सिंहद्वारपर खड़े होने लगे। श्रीजगन्नाथके सेवक रातमें अपनी सेवा समाप्तकर जब अपने घर जाते हैं, तो उस समय वे आनन्द-बाजारसे प्रसाद खरीदकर सिंहद्वारपर खड़े हुए भिक्षुक वैष्णवोंको दिया करते हैं। सदासे यही प्रथा चली आ रही है। वैष्णवगण सारा दिन नामसङ्कीर्तन करते हैं, इच्छानुसार श्रीजगन्नाथका दर्शन करते हैं। कुछ लोग छत्रमें जाकर जो कुछ मिल जाता है, उसे खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं तथा कुछ वैष्णव भिक्षाके लिए रात्रिके समय सिंहद्वारपर खड़े हो जाते हैं। श्रीमन्महाप्रभुके भक्तोंमें वैराग्यकी प्रधानता होती है, जिसे देखकर भगवान् गौरसुन्दर अति प्रसन्न होते हैं। श्रीरघुनाथका ऐसा आचरण देखकर श्रीगोविन्दने श्रीमन्महाप्रभुसे कहा—"प्रभो! रघुनाथ अब यहाँपर प्रसाद नहीं लेते। रात्रिमें सिंहद्वारपर खड़े होकर भिक्षा माँगकर खाते हैं।" सुनकर महाप्रभु अत्यन्त सन्तुष्ट होकर कहने लगे—"यह तो रघुनाथने बहुत अच्छा किया, जो वैरागी-धर्मका आचरण अपना लिया। वैरागी व्यक्तिको सदा नामसङ्कीर्तन करना चाहिए तथा भोजनके लिये भिक्षा माँगकर अपना जीवन निर्वाह करना चाहिये। वैरागी होकर भी जो अन्योंकी अपेक्षा रखता है (अर्थात् किसी अन्यपर निर्भर रहता है), कभी भी उसके भजनकी सिद्धि नहीं हो सकती

‘कभी भी सांसारिक बातें मत सुनना तथा न ही कहना। अच्छी स्वादिष्ट वस्तुएँ मत खाना तथा अच्छे सुन्दर वस्त्र मत पहनना। दूसरोंसे कभी भी अपने सम्मानकी आशा मत रखना तथा सबको यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हुए सदा कृष्णनाम-सङ्कीर्तन करना तथा मनसे सदा व्रजमें राधा-कृष्णकी सेवा करना।’...साक्षात् श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे यह उपदेश सुनकर श्रीरघुनाथ अति आनन्दित हुए।

तथा श्रीकृष्ण भी उसकी उपेक्षा कर देते हैं। वैरागी होकर भी जो जिह्वाके स्वादपूर्तिकी लालसासे इधर-उधर भटकता है, वह जननेन्द्रिय तथा उदर-परायण होकर कृष्णको प्राप्त नहीं कर सकता। अतः वैरागी व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह सदा नामसङ्कीर्तन करेगा तथा सहजरूपमें उसे जो शाक, पत्र, फल, मूल आदि मिलेगा उसीसे अपने देहकी रक्षा करेगा” अगले दिन श्रीस्वरूप दामोदरने श्रीमन्महाप्रभुसे निवेदन करते हुए कहा—“प्रभो! रघुनाथ आपके चरणोंमें निवेदन कर रहा है—अब मेरा क्या कर्तव्य है, मेरे जीवनका क्या उद्देश्य है, मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता। अतः कृपापूर्वक अपने श्रीमुखसे इस विषयमें मुझे उपदेश प्रदान कीजिए” प्रभु हँसते हुए कहने लगे—“मैंने स्वरूप दामोदरको तुम्हारे उपदेष्टाके रूपमें नियुक्त किया है। ये ही तुम्हें साध्य-साधन तत्त्वका उपदेश प्रदान करेंगे। मैं स्वयं उतना नहीं जानता जितना ये जानते हैं। तथापि तुम यदि मेरे मुखसे ही कुछ सुनना चाहते हो, तो मैं तुम्हें कुछ उपदेश दे रहा हूँ, तुम उनका भलीभाँति पालन करना—‘कभी भी सांसारिक बातें मत सुनना तथा न ही कहना। अच्छी स्वादिष्ट वस्तुएँ मत खाना तथा अच्छे सुन्दर वस्त्र मत पहनना। दूसरोंसे कभी भी अपने सम्मानकी आशा मत रखना तथा सबको यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हुए सदा कृष्णनाम-सङ्कीर्तन करना तथा मनसे सदा व्रजमें राधा-कृष्णकी सेवा करना।’ इस प्रकार मैंने तुम्हें संक्षेपमें कुछ उपदेश प्रदान किये हैं। अब स्वरूप दामोदर तुम्हें इस विषयमें विस्तारसे समझायेंगे।” साक्षात् श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे उपदेश सुनकर श्रीरघुनाथ अति आनन्दित हुए। उन्होंने महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना की। महाप्रभुने भी उन्हें कृपापूर्वक आलिङ्गन प्रदान किया तथा उन्हें पुनः श्रीस्वरूप दामोदरके हाथोंमें सौंप दिया।

श्रीरघुनाथके जीवन-यापनका वृत्तान्त सुनकर उनके पिता द्वारा सेवक एवं धन भेजना

उसी समय गौड़देशके समस्त भक्त पुरी पहुँच गये। प्रतिवर्षकी भाँति श्रीमन्महाप्रभु सबसे मिले। तत्पश्चात् महाप्रभुने सबको लेकर गुण्डिचा-मन्दिरका मार्जन किया तथा प्रतिवर्षकी भाँति ही वन-भोजन किया।

फिर रथयात्राके समय सबको लेकर रथके आगे नृत्य किया। महाप्रभुका अद्भुत नृत्य देखकर श्रीरघुनाथदास आश्चर्यचकित रह गये। जब श्रीरघुनाथदास समस्त भक्तोंसे मिले, तब श्रीअद्वैताचार्यने उनपर बहुत कृपा की। शिवानन्दसेनने उन्हें बताया कि,—"तुम्हें लेनेके लिए तुम्हारे पिताने दस लोगोंको मेरे पास भेजा था तथा तुम्हें समझा-बुझाकर घर भेजनेके लिए मुझे पत्र भी लिखा था। परन्तु तुम्हें हमारे साथ न पाकर वे लोग झाँकरासे वापस लौट गये।" इस प्रकार प्रतिवर्षकी भाँति ही गौड़देशके सभी भक्त चार मास तक नीलाचलमें श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंमें रहकर वापस बङ्गाल लौट गये। उनके वापस लौटनेका समाचार पाकर श्रीरघुनाथदासके पिताने श्रीशिवानन्द सेनके पास एक व्यक्तिको भेजा। उस व्यक्तिने श्रीशिवानन्दके पास जाकर पूछा—"क्या आपने महाप्रभुके पास किसी वैष्णवको देखा? उनका नाम श्रीरघुनाथदास है तथा वे श्रीगोवर्धन मजुमदारके पुत्र हैं। क्या नीलाचलमें आपकी उनके साथ भेंट हुई?" श्रीशिवानन्द बोले—"हाँ! वे महाप्रभुके पास ही हैं। उनकी बहुत ख्याति है, उन्हें कौन नहीं जानता? महाप्रभुने श्रीरघुनाथको श्रीस्वरूप दामोदरके हाथोंमें समर्पित किया है तथा श्रीरघुनाथ सभी वैष्णवोंको प्राणोंके समान प्रिय हैं। वे रात-दिन नामसङ्कीर्तन करते रहते हैं तथा क्षणभरके लिए भी श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंको नहीं छोड़ते हैं। उनका वैराग्य आश्चर्यजनक है, वे खाने-पीनेकी भी चिन्ता नहीं करते। जैसे-तैसे कुछ खाकर अपने प्राणोंकी रक्षा करते हैं। वे सारा दिन साधन-भजन करते रहते हैं तथा रात्रिके समय श्रीजगन्नाथकी पुष्पाञ्जलिके दर्शनकर भोजनकी भिक्षाके लिए सिंहद्वारपर खड़े हो जाते हैं। यदि किसीने भिक्षामें कुछ दे दिया तो उसे खा लेते हैं, नहीं तो भूखे ही नाम-सङ्कीर्तन करते रहते हैं।" यह सुनकर वह व्यक्ति श्रीगोवर्धन मजुमदारके पास आया तथा उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। श्रीरघुनाथके जीवन-यापनका वृत्तान्त सुनकर उनके माता-पिता बहुत दुःखी हो गये। इसलिए उन्होंने अपने पुत्रके पास खाने-पीनेकी वस्तुएँ तथा सेवक भेजनेकी व्यवस्था की। उन्होंने तुरन्त चार-सौ मुद्राओंके साथ दो सेवक तथा एक ब्राह्मणको श्रीशिवानन्दके पास भेज दिया। श्रीशिवानन्दने उनसे कहा—"तुम अकेले अभी पुरी नहीं जा पाओगे। मैं जब वहाँ जाऊँगा, तो तुम्हें भी अपने साथ ले जाऊँगा। अतः इस समय तुम वापस लौट जाओ।" यह सुनकर वे तीनों वापस लौट गये। अगले वर्ष जब श्रीशिवानन्द भक्तोंको लेकर नीलाचलके लिए निकले, तो उनके साथ ही श्रीगोवर्धन मजुमदारने श्रीरघुनाथदासके लिए दो सेवक तथा एक ब्राह्मणको चार-सौ मुद्राओंके साथ भेज दिया। श्रीजगन्नाथपुरी पहुँचकर वे श्रीरघुनाथदाससे मिले। पहले तो श्रीरघुनाथदासने उन सेवकों तथा उस ब्राह्मणको स्वीकार नहीं किया, परन्तु बादमें कुछ विचारकर एक सेवक तथा एक ब्राह्मणको धन सहित रोक लिया तथा उन मुद्राओंको भी रख लिया।

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा एक साधकके लिए विषयी व्यक्तिका अन्न खानेके सम्बन्धमें उपदेश

तबसे श्रीरघुनाथदासने एक मासमें दो दिन बहुत ही आदरपूर्वक श्रीमन्महाप्रभुको भोजनके लिये निमन्त्रण देना आरम्भ कर दिया। दो दिन निमन्त्रण करनेमें आठ आने खर्च होते थे, श्रीरघुनाथ ब्राह्मण एवं उस सेवकसे केवल आठ आना ही ग्रहण करते थे। इस प्रकार दो वर्षतक वे श्रीमन्महाप्रभुको निमन्त्रण देते रहे तथा महाप्रभु भी सहर्ष उस निमन्त्रणको स्वीकार करते रहे। दूसरे वर्षके अन्तमें श्रीरघुनाथने महाप्रभुको निमन्त्रण देना बन्द कर दिया। लगातार दो मासतक जब उन्होंने महाप्रभुको निमन्त्रण नहीं दिया, तो एकदिन श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरसे पूछा—"रघुनाथने मुझे निमन्त्रण देना क्यों बन्द कर दिया?" श्रीस्वरूप दामोदरने कहा—"रघुनाथने अपने मनमें विचार किया कि—'मेरे पिता घोर विषयी व्यक्ति

हैं, प्रभुने तो उन्हें विषय-विष्ठारूपी गर्तका कीड़ा कहा है, तथा मैं उन्हींके धनसे प्रभुको निमन्त्रण देता हूँ। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभु इस निमन्त्रणसे सन्तुष्ट नहीं हैं, वे केवल मेरा मन रखनेके लिए ही इस निमन्त्रणको स्वीकार कर रहे हैं अर्थात् वे सोच रहे हैं कि यदि मैं इसका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करूँगा, तो यह मूर्ख दुःखी हो जायेगा। दूसरी ओर उस धनको ग्रहणकर प्रभुकी सेवामें लगानेसे मेरा चित्त ही निर्मल नहीं हो रहा है। इससे तो केवल मुझे जड़ीय प्रतिष्ठा ही प्राप्त हो रही है।' ऐसा विचारकर उसने निमन्त्रण देना बन्द कर दिया।"

यह सुनकर श्रीमन्महाप्रभु हँसते हुए बोले—"विषयी व्यक्तिका अन्न खानेसे चित्त मलिन हो जाता है तथा मनके मलिन होनेपर कृष्णका स्मरण नहीं हो पाता। विषयी व्यक्तिका निमन्त्रण राजसिक होता है, उससे निमन्त्रण देनेवाले तथा ग्रहण करनेवाले—दोनोंका ही मन मलिन हो जाता है। मैं तो केवल उसका मन रखनेके लिये उसका निमन्त्रण स्वीकार कर रहा था। अच्छा हुआ कि आज वह मेरे मनकी बात समझ गया तथा उसने स्वयं ही निमन्त्रण देना बन्द कर दिया।"

श्रीरघुनाथदासके आचरणसे प्रसन्न होकर श्रीमन्महाप्रभुका उन्हें अपने द्वारा सेवित गोवर्धन-शिला तथा गुञ्जामाला प्रदान करना

कुछ दिन बाद श्रीरघुनाथदासने सिंहद्वारपर खड़ा होना भी बन्द कर दिया। अब वे अन्न-छत्रमें जाकर माँगकर खाने लगे। श्रीगोविन्दके मुखसे यह बात सुनकर महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरसे इस विषयमें पूछा—"रघुनाथने सिंहद्वारपर खड़े होकर भिक्षा माँगना क्यों बन्द कर दिया?" श्रीस्वरूप दामोदर बोले—"सिंहद्वारपर खड़े होकर भिक्षा माँगनेमें रघुनाथके मनमें कुछ कष्ट हो रहा था, इसलिये उसने सिंहद्वार छोड़ दिया तथा अब वह छत्रमें जाकर भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह कर रहा है।" सुनकर श्रीमन्महाप्रभु कहने लगे—"उसने सिंहद्वारको छोड़कर बहुत ही अच्छा किया। सिंहद्वारपर खड़े होकर भिक्षावृत्ति तो वेश्यावृत्तिके समान है।

अयमागच्छति, अयं दास्यति,
अनेन दत्तमयमपरः।
समेत्ययं दास्यति, अनेनापि न दत्तमन्यः
समेष्यति, स दास्यति॥

(श्रीचैतन्यदेव-वाक्य)

अर्थात् ये आ रहे हैं, ये अवश्य ही देंगे, क्योंकि इन्होंने पहले भी दिया है; अन्य एक व्यक्ति आ रहे हैं, ये देंगे, ये जो व्यक्ति चले गये हैं, इन्होंने नहीं दिया, वे जो दूसरे आ रहे हैं, वे अवश्य ही देंगे; यह वेश्या-वृत्ति है। एक वेश्या अपने द्वारपर खड़े होकर इसी प्रकारसे धनकी लालसासे लोगोंकी अपेक्षा करती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अयाचक वैरागीका वेष ग्रहण करके सिंहद्वारपर खड़े होकर ऐसी ही आशा करता है, उसे कृष्णका स्मरण नहीं हो पाता। छत्रमें जाकर भिक्षा माँगकर खाना उत्तम है, क्योंकि वहाँपर किसीकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ती। वहाँपर निःशुल्क भोजन वितरणमें जो कुछ भी मिल जाये, उसीसे अपना उदर भरणकर सुखसे श्रीकृष्णनाम-सङ्कीर्तन किया जा सकता है।" ऐसा कहकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरघुनाथपर एक और कृपा करते हुए उन्हें 'गोवर्धन-शिला' तथा एक 'गुञ्जामाला' प्रदान की। श्रीशङ्करानन्द सरस्वती जब श्रीवृन्दावन गये थे, तब वहाँसे श्रीजगन्नाथपुरी लौटते हुए वे अपने साथ एक 'गोवर्धन-शिला' तथा एक 'गुञ्जामाला' ले आये थे। श्रीजगन्नाथपुरीमें आकर श्रीशङ्करानन्दने उन दोनों वस्तुओंको श्रीमन्महाप्रभुके सामने रख दिया। उन दोनों ही अपूर्व वस्तुओंको पाकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। हरिनाम करते समय महाप्रभु गुञ्जामालाको अपने गलेमें पहन लेते थे। श्रीगोवर्धन-शिलाको प्रभु कभी अपने हृदयमें तो कभी अपने नेत्रोंपर रखते। वे कभी नाकके द्वारा उसे

सूंघते, तो कभी अपने सिरपर रखते थे। वह शिला सर्वदा महाप्रभुके नेत्रोंसे प्रवाहित होनेवाले अश्रुओंके द्वारा भीगी रहती थी। महाप्रभु उस शिलाको साक्षात् श्रीकृष्णका कलेवर (शरीर) कहते थे। इस प्रकार महाप्रभुने लगातार तीन वर्षतक उस श्रीगोवर्धन-शिला तथा गुञ्जामालाको अपने पास रखा। परन्तु अब महाप्रभुने श्रीरघुनाथदासके आचरणसे सन्तुष्ट होकर वे दोनों ही वस्तुएँ उन्हें प्रदान कर दीं।

महाप्रभु बोले—"रघुनाथ! यह शिला कृष्णका विग्रह है, अतः बहुत ही सावधानीपूर्वक तुम इनकी सेवा करना। इस शिलाका तुम सात्विक-पूजन करना। अतिशीघ्र ही तुम्हें कृष्ण-प्रेमधनकी प्राप्ति होगी। एक कुल्हड़ (जलपात्र) जल तथा तुलसी मञ्जरीके द्वारा तुम इनकी शुद्धभावसे सात्विक सेवा करना।" इस प्रकार पूजा-विधिकी शिक्षा देकर श्रीमन्महाप्रभुने अपने हाथोंसे वह शिला श्रीरघुनाथदासको अर्पित की।

गोवर्धन-शिला तथा गुञ्जामालाकी सेवामें श्रीरघुनाथदासकी बाह्य जगत्‌की स्मृति नहीं रहना

साक्षात् प्रभुके हाथोंसे वह शिला प्राप्तकर श्रीरघुनाथदास आनन्दित होकर उस शिलाकी सेवा करने लगे। श्रीस्वरूप दामोदरने उन्हें आधे हाथ परिमाणके दो वस्त्र, एक पीढ़ा (सिंहासन) तथा जल लानेके लिए एक कुल्हड़ प्रदान किया। इस प्रकार श्रीरघुनाथदास श्रीगोवर्धन-शिलाकी पूजा करने लगे। पूजा करते समय श्रीरघुनाथ उस शिलामें श्रीव्रजेन्द्रनन्दनका दर्शन करते थे। जल तथा तुलसीके द्वारा श्रीगोवर्धन-शिलाकी सेवा करनेमें श्रीरघुनाथदासको जो आनन्द प्राप्त होता था, वैसा आनन्द तो षोडश-उपचारयुक्त पूजासे भी प्राप्त नहीं हो सकता था। इस प्रकार पूजा करते हुए जब कुछ दिन बीत गये, तो एकदिन श्रीस्वरूप दामोदरने उनसे कहा—"रघुनाथ! श्रीगोवर्धन-शिलाको आठ कौड़ी मूल्यके खाजा-सन्देश अर्पित करो। यदि तुम श्रद्धापूर्वक आठ कौड़ीका खाजा भी श्रीगोवर्धनको अर्पण करोगे तो उन्हें वह अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट लगेगा।" तब श्रीस्वरूप दामोदरकी आज्ञासे श्रीगोविन्दने खाजाकी व्यवस्था कर दी। तबसे श्रीरघुनाथदास प्रतिदिन श्रीगोवर्धन-शिलाको खाजा अर्पण करने लगे। जबसे श्रीरघुनाथदासने महाप्रभुसे गोवर्धन-शिला तथा गुञ्जामाला प्राप्त की, तबसे उनकी ऐसी भावना हो गयी कि महाप्रभुने मुझे श्रीगोवर्धन-शिला देकर श्रीगोवर्धनके श्रीचरणकमलोंमें समर्पित कर दिया है अर्थात् मुझे गोवर्धनकी तलहटीमें वास करने की आज्ञा दी है एवं गुञ्जामाला प्रदानकर मुझे श्रीमती राधिकाके चरणोंमें समर्पित किया है। इस प्रकार श्रीरघुनाथदास आनन्द सागरमें ऐसे डूब गये कि उन्हें बाह्य जगत्‌की सम्पूर्ण रूपमें स्मृति ही नहीं रहीं। वे तन-मन-वचनसे श्रीमन्हाप्रभुकी सेवामें निमग्न हो गये।

श्रीरघुनाथदासकी अटल नियम-सेवा एवं वैराग्य देखकर श्रीमन्हाप्रभुका हृदय आनन्दित होना

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीका नियम पालन पत्थरकी रेखाकी भाँति अटल था। वे चौबीस घण्टेमें-से साढ़े बाइस घण्टे कीर्तन तथा भगवान्‌का स्मरण करते रहते थे। केवल डेढ़ घण्टेमें ही भोजन-शयनादि शारीरिक क्रियाएँ करते थे। कभी-कभी तो वे खाना-पीना, शयन आदि भी नहीं करते थे। उनका वैराग्य अद्भुत था। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवनमें अपनी जिह्वाको स्वाद-रसका स्पर्श तक नहीं होने दिया। सम्पूर्ण जीवनमें उन्होंने फटे-पुराने वस्त्रोंके अतिरिक्त कभी अच्छे वस्त्र नहीं पहने तथा बहुत ही सावधानीसे प्रभुकी आज्ञाका पालन किया। वे केवल प्राणोंकी रक्षाके लिए ही थोड़ा-सा आहार करते थे, उसे खाकर भी अपने आपको धिक्कार देते थे।

अब तो श्रीरघुनाथने अन्न-छत्रमें जाना भी बन्द कर दिया। वहाँपर यह समस्या थी कि वहाँपर समयका ध्यान रखना पड़ता था, क्योंकि छत्रमें प्रसाद निश्चित समयपर ही मिलता था। इसलिये

जबसे श्रीरघुनाथदासने श्रीमन्महाप्रभुसे गोवर्धन-शिला तथा गुञ्जामाला प्राप्त की, तबसे उनकी ऐसी भावना हो गयी कि महाप्रभुने मुझे श्रीगोवर्धन-शिला देकर श्रीगोवर्धनके श्रीचरणकमलोंमें समर्पित कर दिया है अर्थात् मुझे गोवर्धनकी तलहटीमें वास करने की आज्ञा दी है एवं गुञ्जामाला प्रदानकर मुझे श्रीमती राधिकाके चरणोंमें समर्पित किया है। इस प्रकार श्रीरघुनाथदास आनन्द सागरमें डूबे रहते।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीको छत्रमें जाना भी भजनमें बाधक लगा। अतः अब उन्होंने भोजनके लिए एक अन्य उपाय निकाला। आनन्द-बाजारमें दुकानदारोंका जो अन्न नहीं बिक पाता, वह दो-तीन दिनमें सड़ जाता था। उस सड़े हुए अन्नको दुकानदार सिंहद्वारके निकट तैलङ्गी गायोंके सामने फेंक देते थे। किन्तु दुर्गन्धके कारण गायें भी उस अन्नको नहीं खा पाती थी। रातको श्रीरघुनाथदास गोस्वामी उस सड़े हुए अन्नको अपने घर ले आते तथा उसे जलसे अच्छी प्रकारसे मसल-मसलकर धोते थे, जिससे गला हुआ भाग तो जलमें बह जाता था, परन्तु उस अन्नके भीतरका जो कुछ सख्त भाग बच जाता था, उसीको नमक मिलाकर वे खा लेते थे। एकदिन श्रीस्वरूप दामोदरने उन्हें वह अन्न खाते हुए देख लिया। उन्होंने हँसते हुए श्रीरघुनाथदास गोस्वामीसे कुछ चावल माँगकर खा लिये तथा कहने लगे—"रघुनाथ! तुम नित्यप्रति ऐसा स्वादिष्ट अमृत स्वयं ही खा जाते हो, हम लोगोंको नहीं देते हो, यह तुम्हारा कैसा स्वभाव है?" जब श्रीगोविन्दके मुखसे श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके इस आचरणके विषयमें सुना तो अगले दिन वे श्रीरघुनाथके पास गये तथा कहने लगे—"रघुनाथ! तुम ऐसी उत्तम वस्तु खाते हो, मुझे क्यों नहीं देते?" ऐसा कहकर महाप्रभुने उन चावलोंका एक ग्रास खा लिया। अभी प्रभु दूसरा ग्रास खाने ही जा रहे थे कि उसी समय श्रीस्वरूप दामोदरने उनका हाथ पकड़ लिया तथा ऐसा कहते हुए—"प्रभो! ये चावल आपके योग्य नहीं हैं।" उनके हाथसे चावल छीन लिये। तब महाप्रभु प्रसन्न होकर बोले—"मैं नित्यप्रति नाना प्रकारका प्रसाद पाता हूँ, किन्तु मुझे ऐसा स्वाद आजतक किसी भी प्रसादमें नहीं मिला।" इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते। विशेषरूपसे श्रीरघुनाथदास गोस्वामीका वैराग्य देखकर उनके हृदयमें बहुत आनन्द होता था।

क्रमशः

स्वधाममें श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज

अत्यन्त दुःखपूर्वक सूचित किया जा रहा है कि विगत ५ सितम्बर २०२५, शुक्रवार श्रीगौर-त्रयोदशी (श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी आविर्भाव-तिथि) के दिन रात्रि ११-३६ मिनटपर श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज प्रायः ६२ वर्षकी आयुमें कलकत्तामें हमलोगोंको विरहसागरमें निमज्जितकर स्वधाम पधार गये हैं। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन अत्यन्त निष्ठापूर्वक श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें अपनेको पूर्णरूपसे नियुक्त किया था। उनकी सेवा-परायणता, कर्त्तव्यनिष्ठा, दायित्वशीलता आदि गुण आदर्श स्थानीय थे।

अगले दिन प्रातः उनके कलेवरको श्रीनवद्वीपधाममें गङ्गातटके निकट स्थित श्रीसज्जनसेवक गौड़ीय मठमें लाया गया। पूर्वाह्न १०.३० बजे यथारीति हरिनाम सङ्कीर्तन करते हुए श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदविहारीजीकी प्रसादी माला तथा उनके दीक्षा श्रीगुरुदेव—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके समाधि-मन्दिर एवं उनके शिक्षागुरुदेव—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके समाधि-मन्दिरसे प्रसादी माला श्रीपाद गोविन्द महाराजको अर्पित कर उनकी आरती की गयी। विभिन्न मठोंके संन्यासी-ब्रह्मचारीवृन्द, गृहस्थ पुरुष-महिला वैष्णवजन एवं सज्जनवृन्दने मठमें उपस्थित होकर उनको श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि अर्पण की। समाधिका स्थान यथारीति प्रस्तुत होनेके बाद सात्वत-विधिके अनुसार सत्क्रियासार दीपिकाका अवलम्बन करते हुए हरिध्वनिके बीच श्रीमद्भक्तिवेदान्त परिव्राजक महाराजके आनुगत्यमें विभिन्न संन्यासी-ब्रह्मचारी भक्तों द्वारा उनका समाधिकार्य सम्पन्न किया गया।

श्रीपाद गोविन्द महाराजने पश्चिमबङ्गके दक्षिण २४ परगना जिलेके अन्तर्गत सोनाटिकी ग्राममें पिता श्रीगोपाल कयाल एवं माता श्रीमती यमुनादेवीके पुत्ररूपमें ३ फरवरी १९६३ ई॰ गौर-दशमीके दिन जन्म ग्रहण किया। माता-पिताने उनका नाम रखा—सपन कुमार। वे अपने माता-पिताके निकट अधिक दिन नहीं रहे। अल्प आयुमें ही उनके मामा-मामी, जो कि श्रीनवद्वीपधाम स्थित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति-आचार्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित थे, उन्हें अपने पास ले गये और उन्होंने अपना बाल्यकाल अपने मामा-मामीके पास रहकर ही बिताया। (परवर्ती कालमें उनके मामाने श्रील गुरुदेव—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी

महाराजसे बाबाजी वेश ग्रहण किया और उनका नाम हुआ श्रीसम्विदानन्द दास बाबाजी महाराज।)

सपन कुमार (श्रीपाद गोविन्द महाराज)ने सोनाटिकी ग्राममें प्राथमिक शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् कौतला स्थित रामकृष्ण आश्रममें उच्च-माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की एवं इसी कालमें उन्होंने अपने गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके प्रथम बार दर्शन प्राप्त किए। उच्च-माध्यमिक शिक्षा सम्पूर्ण करनेके उपरान्त अपने श्रीगुरुदेवके आदेशानुसार उन्होंने डायमण्ड हारबरके फकिरचाँद कालेजसे B.Com. (Hons)में स्नातक degree प्राप्त की। वर्ष १९८३ ई॰ में कालेजमें शिक्षा ग्रहण कालमें ही वे अपने गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजसे श्रीहरिनाम-दीक्षा ग्रहणकर श्रीसत्यानन्द दास ब्रह्मचारी नामसे परिचित हुए। स्नातक degree प्राप्तकर उन्होंने सरकारी परीक्षामें उतीर्ण होकर सरकारी बैंकमें नियुक्ति-पत्र प्राप्त किया।

इसी समय उनके श्रीगुरुपादपद्मने गोपीकान्त प्रभु (श्रीमद्भक्तिवेदान्त जर्नादन महाराज)को उनके घर भेजकर उन्हें अपने निकट बुलवाया। सत्यानन्द दास ब्रह्मचारीने अपने श्रीगुरुदेवके निकट उपस्थित होकर जैसे ही अपना नियुक्ति-पत्र उनको दिखाया, तत्क्षणात् ही उनके श्रीगुरुदेवने उसे फाड़कर फैंक दिया और उन्हें श्रीभगवान्‌की नित्यसेवामें आत्मसर्म्पण करनेका उपदेश दिया। सत्यानन्द दास ब्रह्मचारी अपने श्रील गुरुदेवके इस आदेशको सहर्ष पालन करनेके लिए दृढ़ प्रतिज्ञाबद्ध हुए एवं तभीसे उनका पूर्ण मठवास जीवन आरम्भ हुआ।

मठवास जीवनके आरम्भमें उनके गुरुदेवने उन्हें विभिन्न स्थानोंमें प्रचारसेवामें नियुक्त किया। परवर्त्ती कालमें उनको प्रकाशन विभागमें श्रीगौड़ीय-पत्रिका और ग्रन्थादि प्रकाशन सेवामें नियुक्त किया। उन्होंने अत्यन्त दक्षता सहित प्रकाशन विभागकी सेवा सम्पादन की। प्रकाशन विभागके अन्तर्गत विभिन्न ग्रन्थोंकी भूमिका रचना, प्रूफ-संशोधन, प्रबन्धादि रचना कार्योंमें दक्षता देखकर उनके गुरुदेवने श्रीनवद्वीप-धाम-प्रचारिणी सभाके माध्यमसे उनको 'विद्यारत्न'की उपाधिसे विभूषित किया। अनेक बङ्गला ग्रन्थोंके प्रकाशनमें विशेष योगदान द्वारा गौड़ीय-वैष्णव साहित्यके संरक्षण और प्रचारमें उनका विशेष अवदान रहा एवं उन्होंने गत २० वर्षोंसे श्रीगौर-पूर्णिमाके समय श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टसे बङ्गला-पञ्जिका निकालनेका सम्पूर्ण दायित्व निभाया।

प्रकाशन विभागकी सेवाके अतिरिक्त उन्होंने मठ-मन्दिर निर्माण कार्य, समिति-ट्रस्टके accounts, ट्रस्टसे सम्बन्धित विभिन्न सरकारी कार्यों एवं मामला-मुकद्दमा आदि को अत्यन्त दक्षतापूर्वक किया।

श्रीपाद गोविन्द महाराजने अपने श्रीगुरुदेवके निर्देशसे कोलकाताके हालदार बगाान स्थित श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठ एवं हरिद्वारमें कङ्खल स्थित श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठके निर्माणमें तथा विशेषरूपसे अपने शिक्षागुरुदेव—श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके निर्देशसे कोलकाताके माणिकतला स्थित श्रीवामन गोस्वामी गौड़ीय मठके निर्माणका सम्पूर्ण दायित्व तथा अनेक वर्षों तक वहाँके मठरक्षकके रूपमें सेवाएँ दीं। इसके अतिरिक्त मथुरा स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके नव-निर्माणमें अपने विशिष्ट अनुभवका योगदान दिया।

अपने श्रीगुरुदेवके अप्रकटसे पूर्व, कालके प्रभावसे, समितिमें विवाद-विसम्वाद उत्पन्न होनेपर वे अपने शिक्षागुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके साथ श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिसे बाहर चले आये और अपने दीक्षा एवं शिक्षा गुरुदेव क्रमशः श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके आदेशानुसार १४ अक्टूबर १९९९ ई॰ को प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टके secretary का दायित्व उन्होंने निष्ठापूर्वक जीवनकाल पर्यन्त निर्वाह किया।

उनकी गुरुभक्ति, सेवानिष्ठा, कर्तव्य-परायणताको लक्ष्य करते हुए श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टके उप-सभापति ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने वर्ष २००५ ई॰ की फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन श्रीमन्महाप्रभुकी शुभाविर्भाव तिथिपर श्रीनवद्वीप-धाममें उनको त्रिदण्ड-संन्यास वेश प्रदान किया। संन्यास ग्रहणके बाद वे 'श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज' के नामसे परिचित हुए।

विगत ७/०९/२०२५ रविवारको श्रीविश्वरूप महोत्सवके दिन श्रीनवद्वीप-धाम स्थित श्रीसज्जनसेवक गौड़ीय मठमें उनका विरह-महोत्सव पालन किया गया। उस विरह-सभामें श्रीधाम नवद्वीप और मायापुरके सारस्वत गौड़ीय वैष्णवगण उपस्थित हुए। विरह-सभामें वैष्णवोंने श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराजके भगवान् और गुरुकी सेवामें एकनिष्ठता सहित जीवन उत्सर्ग, अस्वस्थ अवस्थामें भी अति सहनशीलता पूर्वक सेवा परायणता आदि गुणोंका वर्णन किया। विरह-सभामें उपस्थित संन्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ वैष्णव-वैष्णवी और सज्जनोंको श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदविहारीके विविध प्रकारके महाप्रसाद का सेवन कराया गया।

अब हम श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराजके द्वारा की जानेवाली साक्षात् सेवा-दर्शनके सौभाग्यसे चिरकालके लिए वञ्चित हो गये हैं। उनके आराध्यदेव—श्रीगुरुपादपद्मने उन्हें अपनी उत्तरोत्तर सेवाओंमें आकर्षित किया है। हम उनके चरणोंमें प्रार्थना करते हैं कि वे अपने आराध्यदेवके निकट रहते हुए हम लोगों पर आशीर्वाद करें, जिससे कि हम उनके जीवनके सेवादर्शको सामने रखकर श्रीगुरु-वैष्णव-सेवामें नियुक्त रह सकें।

—विरही जन

(आभार—रासबिहारी दास)

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभुकी स्मृतिमें

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके कृपापात्र तथा स्नेहसे अभिषिक्त प्रिय शिष्य—श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभुने, पौष मासकी कृष्णा षष्ठी तिथि, बुधवार, १० दिसम्बर २०२५ ई॰ को, श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके जन्मस्थानपर स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठमें श्रीश्रीराधा-नयनमणिकी निशान्त-लीलाके समय प्रातः ५ बजकर ३० मिनटपर एक-सौ वर्षकी आयुमें स्वधाममें गमन किया है।

जन्म एवं युवावस्थाका एक दृष्टान्त

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभुका जन्म झारखण्ड प्रदेशके राञ्ची जिलेके अन्तर्गत आरारनवाड़ ग्राममें एक

जमींदार परिवारमें हुआ था। वे तीन भाइयोंमें-से सबसे छोटे थे। उनके गाँवके निकट एक नदी थी। एक बार सन्ध्याके समय जब श्रीयशोदानन्दन प्रभु जङ्गलमें शौचके लिये जा रहे थे तब रास्तेमें एक बाघ उनके सामने आ गया। प्रभुजी और बाघ आमने-सामने परस्परको देख रहे थे। कुछ क्षण इस प्रकार देखनेके पश्चात् प्रभुजी आत्मरक्षा हेतु अपने हाथमें पकड़े हुए गमछेको लम्बा घुमा-घुमाकर अत्यन्त साहसके साथ बाघकी ओर चलने लगे, बाघ सम्भवतः उस गमछेको कोई अस्त्र-शस्त्र समझकर भयभीत होकर जङ्गलकी ओर भाग गया। इस प्रकार उन्होंने अत्यन्त साहस एवं बुद्धिमानी पूर्वक बाघसे अपनी रक्षा की।

गृह-त्याग और गुरु-पदाश्रय

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु वैष्णवोंके सङ्गके प्रभावसे श्रीबलराम नामक एक प्रभुके साथ श्रीधाम मायापुरमें आकर परमाराध्य श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजसे हरिनाम-दीक्षा प्राप्त करके वहीं वास करने लगे।

गुरु-प्रदत्त स्थानपर सेवा-निष्ठा सहित वास

श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरकी आविर्भाव स्थलीका रजिस्ट्रेशन जब श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके नामपर हुआ, उस समय वहाँपर १४ किरायेदार रहते थे जो उस स्थानको छोड़कर नहीं जा रहे थे, जिसके कारण मामला-मुकद्दमा आदि भी करना पड़ा। वहाँपर सर्वप्रथम जो स्थान(कक्ष) मिला, वहींपर ही श्रीगुरु-गौराङ्ग-राधा-नयनमणिजीके छोटे विग्रहोंकी सेवा प्रारम्भ हुई। उन्हीं दिनों अपने गुरु-महाराज श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके निर्देशसे श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु मायापुरसे श्रीजगन्नाथ पुरी आकर उपस्थित हुए। तत्पश्चात् प्रतिकूल अवस्थाका सामना करके मठका निर्माण कार्य आरम्भ हुआ। उस समय किरायेदारोंका मठ-सेवकोंके प्रति बार-बार अत्याचार, भय-प्रदर्शन तथा बहुत प्रकारसे लाञ्छन-गाञ्जन आदि हो रहे थे। किरायेदार समय-समय पर मठवासियोंकी दो पादुकाओंमें-से एकको नालीमें फैंक देते थे। जब सभी मठवासी कक्षके भीतर होते थे, तब वे लोग बाहरसे कुण्डी बन्द कर देते थे, कभी दरवाजेके आगे अपवित्र वस्तुएँ फैंक देते थे। इतनी प्रतिकूल अवस्थाओंमें अन्यान्य सेवकोंके कभी निरुत्साहित या कभी क्रोध-युक्त हो जानेपर भी श्रीयशोदानन्दन प्रभु सदैव धैर्य धारण करके शान्त रहते थे। उनके शान्त स्वभाव और मधुर व्यवहारको देखकर सभी मठवासियोंके प्रति शत्रुतापूर्ण आचरण करनेवाले किरायेदार भी प्रभुजीके प्रति क्रमशः अत्यधिक आदर-युक्त तथा मित्रवत् हो गये। श्रील भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज श्रीयशोदानन्दन प्रभुको 'अजातशत्रु' कहकर पुकारते थे। अर्थात् जिनके हृदयमें कभी किसीके प्रति भी शत्रुताका भाव उदित ही नहीं होता था।

श्रीयशोदानन्दन प्रभु प्रतिदिन श्रीजगन्नाथ मन्दिरके सामने वाले कुएँसे स्वच्छ जल मठमें लाते थे जिससे ठाकुरजीकी रसोई और सेवा होती थी एवं वैष्णव लोग भी उसी जलका पान करके सन्तुष्ट होते थे। प्रत्येक दिन उनके प्रायः तीन घण्टे जलको पुनः पुनः लानेमें व्यतीत हो जाते थे। तब श्रीयशोदानन्दन प्रभु ही तीनों समय रसोई बनाते थे। ठाकुरजीके अर्चन-सेवा-पूजाका भी सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं पर था।

वैष्णव-सेवा

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके चरणाश्रित श्रीगुरुदास बाबाजी महाराजने श्रीजगन्नाथ पुरीमें अस्वस्थ लीला प्रकटित की। नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजने पत्रके माध्यमसे श्रीयशोदानन्दन प्रभुको निर्देश दिया कि श्रीगुरुदास बाबाजी महाराजकी सेवामें किसी प्रकारकी

कमी नहीं रखना, त्रुटि भी नहीं करना। यदि कभी धनका अभाव लगे तो निःसङ्कोच होकर मुझसे मँगवा लेना, Emergency की अवस्थामें श्रील भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज अथवा श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजके मठसे उधार भी ले सकते हो, किन्तु सेवा उत्तम स्तरकी करना। अपने गुरुदेवका आदेश पाते ही श्रीयशोदानन्दन प्रभुने श्रीगुरुदास बाबाजी महाराजकी सेवा प्रारम्भ कर दी। दिन-रात उनकी सेवामें व्यस्त रहते थे। बाबाजी महाराजको अपने हाथोंसे प्रसाद खिलाते थे, रात्रिके समय उन्हें घण्टों पंखा झलते थे एवं अन्य अनेक प्रकारसे उनकी सेवाएँ करते थे।

एक बार श्रील प्रभुपाद चरणाश्रित श्रीपाद कृष्णकेशव ब्रह्मचारी प्रभुजीने श्रीयशोदानन्द प्रभुसे कहा कि मुझे थोड़ा चिड़वा लाकर दे दो, मैं नाश्ता करूँगा। वे अभी दोनेमें चिड़वा लेने जा ही रहे थे कि श्रील प्रभुपाद चरणाश्रित श्रीपाद जगमोहन प्रभुने उनसे कहा—यशोदा! मेरे लिये नींबू अमनिया कर दो। उनकी बात सुनकर यशोदा प्रभु हाथमें खाली दोना लेकर ही नींबू लेने चले गये, अभी नींबू हाथमें लेकर आये ही थे कि पूज्यपाद भारती महाराजने उनसे कहा, यशोदा प्रभु! यह पत्र डाकखानेमें अभी-अभी पहुँचाना अति आवश्यक है। श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु एक हाथमें दोना, नींबू तथा दूसरे हाथमें पत्रको लेकर निकट स्थित डाकघर चले गये। अतिशीघ्र लौटकर आ भी गये, तथा फिर शीघ्रातिशीघ्र श्रीपाद कृष्णकेशव ब्रह्मचारीको चिड़वा तथा श्रीपाद जगमोहन प्रभुको नींबू लाकर दे दिया। अर्थात् स्वभाविक रूपसे ही वे श्रेष्ठ वैष्णवोंकी सेवा-आज्ञाके प्रति समर्पित थे एवं किसी एक वैष्णवकी सेवामें व्यस्त होनेके बहाने अन्य वैष्णवके आदेशकी अवहेलना नहीं करते थे। व्यक्तिगत असुविधा होनेपर भी वे मधुर-मधुर मुस्कान सहित वैष्णव-सेवाके अवसरको कभी गँवाते नहीं थे। 'मैं यह सेवा नहीं कर पाऊँगा', 'मैं बहुत थक गया हूँ, 'अन्य लोग कुछ भी नहीं करते' इत्यादि वचनोंसे मानो उनका दूर तक कोई परिचय ही नहीं था।

वैष्णव-सेवा उनके प्राण स्वरूप थी। कोई वैष्णव यदि उन्हें प्रणामी देता तो वे स्वीकार कर लेते, किन्तु बादमें उसमें कुछ पैसे और मिलाकर उन्हीं वैष्णवको प्रणामी देते हुए '*ददाति प्रतिगृह्णाति*' कहकर अर्पित कर देते। उन्हें स्वयंको जो भी प्रणामी मिलती थी, वे उसका एक-एक पैसा वैष्णव-सेवामें ही व्यय कर देते थे। यदि उनके पास प्रणामी सञ्चित हो जाती तो वे कभी श्रीजगन्नाथ महाप्रसादके द्वारा वैष्णवोंकी सेवा, कभी श्रील प्रभुपाद और कभी श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव या तिरोभाव तिथिमें व्यय कर देते थे। श्रीजगन्नाथ पुरीमें आनेवाले सभी गुरुभ्राताओंको वे अपनी योग्यतानुसार श्रीजगन्नाथजीका खाजा प्रसाद एवं निर्माल्य मँगाकर उनके स्थानपर भक्तोंमें वितरण करने हेतु भेजते थे।

माता-तुल्य गुणोंसे युक्त

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरजीकी आविर्भाव-स्थलीपर श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके श्रीविग्रहोंकी स्थापना वाले दिवससे ही श्रीयशोदानन्दन प्रभुको भण्डारीके रूपमें समस्त सेवाएँ सौंप दी गयी थीं। उन्होंने भी इस दायित्वको लगभग पैंत्तीस वर्षोंतक अत्यधिक सुचारु रूपसे निर्वाह किया। सभी वैष्णव श्रीयशोदानन्दन प्रभुको 'यशोदा माँ' कहकर सम्बोधन करते थे। माँ जिस प्रकार अपनी सभी सन्तानोंकी, परिवारके सभी सदस्योंकी, सगे-सम्बन्धियोंके आनेपर उनकी तथा अतिथियोंकी देखभाल करती है, श्रीयशोदानन्दन प्रभु श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, पुरीमें वास करनेवाले तथा आने-जानेवाले भक्तों-अतिथियोंकी उसी प्रकार अथवा उससे भी अधिक देखभाल करते थे। कभी-कभी तो वे अपना प्रसाद भी अन्योंको देकर स्वयं उपवासी रह जाते थे। दिन हो

अथवा रात, जब भी जितने वैष्णव आकर उपस्थित होते, श्रीयशोदानन्दन प्रभु उनकी इच्छानुरूप, रोटी चाहने वालेके लिये रोटी, चावल चाहने वालेके लिये चावल, खिचड़ी, चिड़वा, मूड़ी, इडली, वड़ा, पान्ता-भात आदि तैयार कर देते थे। यदि कोई वैष्णव यात्राके लिये बाहर जाते, तो प्रभुजी उनकी छोटी अथवा बड़ी यात्राके अनुरूप एक समयका, दो समयका अथवा तीन-चार समयका, जितना प्रसाद होना चाहिए, सब व्यवस्था कर देते थे।

गुरु आदेशमें दृढ़ निष्ठा

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु अपने गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके आदेशसे श्रीजगन्नाथ पुरीमें आकर रह रहे थे। जब कोई भक्त श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभुसे श्रीव्रजमण्डल अथवा श्रीगौड़मण्डलमें चलनेके लिए बोलता, तब पहले तो वे उस बातको अनसुना कर देते अथवा कोई भी उत्तर देकर उस बातको टालनेका प्रयास करते, किन्तु तब भी यदि कोई उन्हें पुनः पुनः वही बात कहता तो वे रुष्ट होकर कहते, "मैं क्यों वृन्दावन जाऊँगा? जिसको जाना है वो जाए, मुझे तो मेरे गुरुदेवने यहींपर सेवा करने तथा वास करनेका आदेश दिया था, उसके पश्चात् उन्होंने मुझे अभी तक अन्य कोई आदेश नहीं दिया।" गुरु-आदेशके प्रति उनकी ऐसी अद्भुत निष्ठा थी।

सहनशीलता एवं दैन्य

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु अपने शरीरकी छोटी-मोटी असुविधाकी तो बात ही क्या, बड़ी-बड़ी असुविधाकी बातको बतानेमें भी अत्यधिक सङ्कोच अनुभव करते थे तथा जब तक पानी सिरसे ऊपर नहीं उठ जाता, तब तक पूछनेपर भी नहीं बतलाते थे। वृद्ध तथा अस्वस्थ होनेपर भी वे अपने कक्षकी सफाई, अपने कपड़े, अपने बर्तन आदि स्वयं ही धोते थे तथा कभी अत्यधिक अस्वस्थ होनेपर भी अन्योंसे यह कार्य करवानेमें सङ्कोच करते थे। स्वयं कष्ट करके भी चेष्टा उनकी सदैव यही रहती थी कि वे अपनी व्यक्तिगत सेवा किसीसे भी नहीं करवायें।

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु कभी भी वैष्णवोंके सम्मुख ऊँचे आसनपर नहीं बैठते थे। उनकी अस्वस्थता तथा अति वृद्धावस्थामें भी उन्हें जोर करके ऊपर बैठाने हेतु प्रयास करनेपर भी वे कभी कुर्सीपर नहीं बैठते थे। वे कहते थे, "मैं ऊपर बैठूँगा और वैष्णव लोग मुझसे नीचे बैठेंगे, यह कैसी बात है!"

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु जितनी बार भी शौच जाते, उतनी बार स्नान करते तथा द्वादश तिलक करते। एक दिन इसका कारण पूछनेपर उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा कोई साधन-भजन नहीं है, यदि तिलकको देखकर यमराज मुझपर कृपा करेंगे तो मैं भगवान्‌का दास बन पाऊँगा।"

मर्यादायुक्त साधक जीवन

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु जबसे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ पुरीके भण्डारी बने, तबसे अन्तिम समय तक उन्होंने कभी भी वैष्णव(प्रसाद)-सेवाका अग्रभाग ग्रहण नहीं किया अर्थात् सबसे पहले स्वयं प्रसाद कभी नहीं पाया बल्कि सदैव सभी वैष्णवोंके प्रसाद पा लेनेके उपरान्त ही प्रसाद ग्रहण किया। अस्वस्थ होनेपर भी उन्हें प्रसाद देनेपर भी वे ग्रहण नहीं करते थे, अन्तमें ही प्रसाद पाते थे। किसीके द्वारा बहुत जोर करनेपर कहते, "मैं वैष्णवोंका उच्छिष्ठ-भोजी दास हूँ, केवल अपनी उदरपूर्तिके लिये ही मठमें नहीं आया हूँ।" श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु कभी भी भगवान्‌को अनिवेदित कोई भी द्रव्य ग्रहण नहीं करते थे। यदि कोई उन्हें फल अथवा अन्य कोई वस्तु दे जाता तो वे तुरन्त ही उसे ठाकुरजीके भोगके लिये भेज देते।

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु अपने मठवासके प्रारम्भसे लेकर प्रायः अन्तिम समय तक नियमपूर्वक पाठ–कीर्त्तन तथा आरतीमें ठीक समयपर उपस्थित हो जाते तथा कार्यक्रमके सम्पूर्ण होनेपर ही अपनी भजन–कुटीरमें लौटते। वृद्धावस्थामें आँखोंके अत्यधिक कमजोर होने तथा कानोंसे ऊँचा सुननेपर भी उन्होंने पाठ–कीर्त्तन–आरती आदिमें कोई शिथिलता नहीं की, वे कहते, "ये आँखे पूर्ण स्वस्थ हों, अथवा बिल्कुल भी नहीं, जैसी भी हों, तथापि हम इन आँखोंसे भगवान्‌को नहीं देख सकते, भगवान् ही हमें देखते हैं, इसलिए मैं प्रत्येक दिन आरतीमें उपस्थित होता हूँ। यद्यपि मेरे जड़ीय कान भी ठीकसे कथा नहीं सुन पाते, तथापि मैंने अपने गुरुवर्गसे सुना है कि हरिकथाके समय उपस्थित रहनेसे आत्मापर हरिकथाका प्रभाव निश्चय ही पडता है।" श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभुकी ग्रन्थ अध्ययनमें भी विशेष रुचि थी। वृद्धावस्थामें आँखोंसे ठीक नहीं देखपाने पर भी वे टॉर्च लाइटके द्वारा श्रीचैतन्य–भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत एवं श्रीकृष्णप्रेम–तरङ्गिणी आदि ग्रन्थ पढ़ते थे।

गुरुवर्ग अथवा गुरुभ्राताओं अथवा वैष्णवोंके द्वारा प्रदत्त द्रव्योंका अत्यधिक भक्तिपूर्वक सम्मान करते थे, उसे भली प्रकारसे व्यवहार करते थे। यदि किसी वैष्णवके द्वारा प्रदत्त वस्त्रको उन्होंने व्यवहार करना प्रारम्भ किया, और फिर बहुत समय बाद भी यदि कोई उस वस्त्रको पुराना कहकर इधर–उधर करता तो वे बहुत असन्तुष्ट हो जाते तथा कहते वैष्णव–प्रदत्त–द्रव्य उनकी कृपा–स्वरूप है, उसका अनादर नहीं करना चाहिए, समुचित मर्यादा प्रदान करनी चाहिए।

अन्तिम समय तक निरन्तर मालापर हरिनाम करना, शयन करते समय हाथको घुमाकर ठाकुरजीकी आरती आदि मानसिक सेवा करना, किसी वैष्णवके आनेपर उन्हें प्रसाद देना आदि भक्तिमय कार्योंमें उनकी व्यग्रता परिलक्षित होती थी।

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु अत्यन्त सरल, दैन्यपूर्ण, निष्कपट, सहिष्णु, परोपकारी, निरहङ्कारी, साधु–स्वभावयुक्त, भजन–सेवा–निष्ठापरायण अति उत्तम गुणोंसे युक्त वैष्णव थे। सुमधुर कण्ठ एवं हृदयसे किया गया उनका कीर्त्तन सभी वैष्णवोंको अतिप्रिय था। गुरु–वैष्णव–भगवान्‌के प्रति उनका सुदृढ़ विश्वास, विघ्नोंको स्वीकारकर प्रतिकूल परिवेशमें भी स्वयंका भजन तथा आप्राण चेष्टा द्वारा वैष्णवोंकी सेवाके कारण सभी वैष्णव ही उन्हें यशोदा मैया कहते थे। वैष्णवोंका कहना था कि उनके नाममें जिस प्रकार यशोदा है, उनका काम (सेवा) भी यशोदा मैया की भाँति वात्सल्यसे ओतप्रोत ही था।

यद्यपि श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभु ६ से १० दिसम्बर तक अस्वस्थ रहे, किन्तु तब भी किसीने ऐसा अनुमान नहीं किया था कि वे हम लोगोंको छोड़कर स्वधाममें गमन करेंगे। उनके अन्तिम दर्शन हेतु अनेक संन्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी भक्त एकत्रित हुए तथा क्रमानुसार उन्हें पुष्पमालाएँ तथा पुष्पाञ्जलि प्रदान की। श्रीजगन्नाथदेवके चरणोंकी तुलसी–चन्दन तथा महाप्रसाद उनके मुखमें प्रदान किया गया, तत्पश्चात् पुष्प मालाओं, पल्लवों तथा पताकाओंसे सुसज्जित पालकीमें सङ्कीर्त्तन करते–करते स्वर्गद्वारपर लाकर वैष्णवोचित मर्यादा अनुसार उनका अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ। पुरी स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके अतिरिक्त अन्यान्य स्थानोंपर भी उनका विरह–महोत्सव अनुष्ठित हुआ। उनके अदर्शनसे अनेकानेक वैष्णव विरह सन्तप्त हैं।

वाञ्छा कल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

श्रीपाद यशोदानन्दन प्रभुकी जय!

(आभार—श्रीपाद भक्तिसम्बन्ध शुद्धाद्वैती महाराज)

श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी
द्वारा स्वयं एवं उनके कृपाशीर्वाद और प्रेरणासे
भारतमें प्रतिष्ठित शुद्धभक्ति प्रचार केन्द्रसमूह

१. **श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, जवाहर हाट, मथुरा, (उ.प्र.) ☎ ९७१९०७०९३९

२. **श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ**, दानगली, वृन्दावन, (उ.प्र.) ☎ ९२१९४७८००१

३. **श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, कोलेरडाङ्गा लेन, नवद्वीप, नदीया, (प.बं.) ☎ ९३३३२२२७७५

४. **श्रीदुर्वासा-ऋषि गौड़ीय आश्रम**, ईशापुर, मथुरा, (उ.प्र.) ☎ ९९१७६४३९७१

५. **श्रीगोपीनाथ-भवन,** इमली-तला, परिक्रमा-मार्ग, वृन्दावन, (उ.प्र.) ☎ ९६३४५६३७३९

६. **श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ**, दसविसा, राधाकुण्ड रोड़, गोवर्धन, (उ.प्र.) ☎ (०५६५)२८१५६६८

७. **श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ**, बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली ☎ (०११)२५५३३२६८

८. **श्रीवामन गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३९ रामानन्द चटर्जी स्ट्रीट, कोलकाता-९ ☎ ९७७६२३८३२८

९. **जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठ**, चक्रतीर्थ, पुरी, उड़ीसा ☎ ९७७६२३८३२८

१०. **श्रीराधे-कुञ्ज**, आनन्द-वाटिकाके समीप, परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन (उ.प्र.) ☎ ९७७६२३८३२८

११. **श्रीश्रीराधामाधव गौड़ीय मठ**, प्लाट-३, सेक्टर-२१-सी, फरीदाबाद, हरियाणा ☎ ९९११२८३८६९

१२. **श्रीरङ्गनाथ गौड़ीय मठ**, हेसेरघट्टा, नृत्यग्राम कुटीरके पास, बङ्गलोर ☎ (०८०)२८४६६७६०

१३. **श्रीश्रीगोविन्दजी गौड़ीय मठ**, रूपनगर एन्क्लेव, जम्मू ☎ ९९०६९०४८०९

१४. **श्रीराधाविनोदबिहारी गौड़ीय मठ**, Q-२९, सेक्टर-१२, नोएडा (उ.प्र.) ☎ ९६५०८२४४४२

१५. **आनन्द धाम गौड़ीय आश्रम**, परिक्रमा मार्ग, रमणरेती, वृन्दावन (उ.प्र.) ☎ (०५६५)२५४०८४९

१६. **श्रीनारायण गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३१/२८ दीनबन्धु मित्रा सरणी, सुभाषपल्ली, सिलीगुड़ी (प.बं.) ☎ ८६२९९११४००

१७. **श्रीश्रीराधामदनमोहन मन्दिर**, जयपुर, राजस्थान ☎ ७२२९८८२२२८

RNI NO. - UPHIN/2004/13352
POSTAL REGN NO. - MATHURA - 013/2025-2027
DATE OF PUBLICATION - 14 JANUARY 2026

पारमार्थिक सचित्र हिन्दी पत्रिका श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके सदस्य बनें

- एक वर्षीय (1yr) – ३०० रु॰
- पञ्च वर्षीय (5yr) – १,२०० रु॰
- आजीवन (Lifetime) – ७,५०० रु॰ [७५० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]
- संरक्षक (Patron) – १०,००० रु॰ [१००० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

सदस्यता भुगतानके लिए

(१) **Bank to bank NEFT transfer**

Account name:	SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA
Account no. :	037201000010611
IFSC code:	IOBA0000372
Bank:	Indian Overseas bank

(To help us update your subscription records after the bank deposit or transfer, immediately send an SMS to 9818779345 with your name, amount deposited and date of deposit.)

(२) **Demand draft or Cheque** (account payee) payable to: "SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA" पत्रिका कार्यालयके पते पर Demand draft or Cheque भेजें।

सम्पर्क-सूत्र

श्रीश्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१ (उ.प्र.)

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकामें प्रकाशित प्रबन्ध-समूह एवं विषय-वस्तुसे सम्बन्धित जानकारीके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: gokulchandradas@gmail.com
phone: 9897140412

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाकी सदस्यता-शुल्कके भुगतान एवं नवीन सदस्यता ग्रहण करनेके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: bhagavata.patrika@gmail.com
phone: 9810654916; 8368371929